अछूत-समस्या

संपादक

सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-विजेता

श्रीदुलारेलाल

(सुधा-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का १३९वाँ पुष्प

अछूत-समस्या

लेखक
महात्मा गांधी

अनुवादक
श्रीपरिपूर्णानंद वर्मा
['निठल्लू की राम-कहानी' और 'रानी-भवानी' के लेखक]

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

तृतीयावृत्ति

सजिल्द १।।=)] सं० २००० वि० [सादी ।।।=)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

संपादक का वक्तव्य

हमारी सम्मति मे यह पुस्तक एक अत्यंत सामयिक आवश्यकता की पूर्ति है। इसे प्रकाशित कर इस कार्यालय ने अपने को पवित्र कर लिया है।

लेखों का अनुवाद कैसा हुआ है, इसकी परीक्षा पाठक स्वयं कर लें। लेखों के ऊपर हमने जो संपादकीय नोट दिए हैं, वे केवल लेखों की व्याख्या के लिये, उनके विषयों को स्पष्ट कर देने के लिये तथा उनका संबंध बतला देने के लिये। लेखों का क्रम भी उनकी उपादेयता तथा व्याख्या और आवश्यकता के अनुसार रक्खा गया है, न कि उनके लिखे जाने के समय के अनुसार।

आशा है, पुस्तक से पाठकों को लाभ होगा।

कवि-कुटीर
१। ३। ३४

दुलारेलाल

तृतीय संस्करण का वक्तव्य

आज हम इस सर्वोपयोगी पुस्तक का तीसरा संस्करण लेकर पाठकों के सामने उपस्थित हो रहे हैं। पाठकों ने इसे जिस तरह से अपनाया है, उसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

१। १। ४४

प्रकाशक

अनुवादक के दो शब्द

गांधीजी भारत का दौरा कर रहे हैं। अछूतोद्धार के लिये उन्होंने अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी है। अगली अगस्त तक वह केवल हरिजन-सेवा-कार्य करेंगे। केवल हरिजन-सेवा उचित है अथवा नहीं, राजनीतिक कार्य अधिक महत्त्व-पूर्ण है अथवा यह कार्य, तथा गांधीजी का इस कार्य के लिये ही अपने प्राणों की बाज़ी लगा देना उचित है या नहीं, इस विषय में लोगों का भिन्न मत है। मेरा भी अपना मत है। पर यह समस्या इतनी गंभीर है कि इस पर हर पहलू से विचार करना ही होगा। गांधीजी इस समय से नहीं, आज २० वर्ष से हरिजनों के सबसे सच्चे, श्रेष्ठ तथा महान् सेवक हैं। इस महान् कार्य के विरोधियों के लिये गांधीजी से बड़ा कोई शत्रु नहीं। अतएव अछूत-समस्या पर गांधीजी का मंतव्य जान लेना आवश्यक है। जिन्हें उनका व्याख्यान सुनने का अवसर न मिला हो, जो उनके विरोधियों के तर्कों से निराश हो गए हों, उनके लिये यह आवश्यक है कि एक ही स्थान पर एकत्र गांधीजी के विचारों को पढ़कर इस समस्या को अच्छी तरह हृदयंगम कर लें।

आज से एक वर्ष पूर्व अपनी 'हिंदू-हित की हत्या'-पुस्तक लिखने के बाद तथा दीवान गोकुलचंद्र कपूर-लिखित 'दलितों की समस्या'-पुस्तक को पढ़कर मैंने यह निश्चय किया था कि हरिजन-समस्या पर गांधीजी के लेखों को एक स्थान पर एकत्र करूँगा। और, अँगरेज़ी में मैंने २४-२५ लेख इकट्ठे भी किए, पर उनका अनुवाद करने का समय न मिला। इसी बीच भाई रामनाथलाल सुमन की The Bleeding Wound नामक सुंदर पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें गांधीजी के लेखों का बड़ा सुंदर

संग्रह है । इस पुस्तक में प्रायः वे सभी लेख आ गए थे, जिनको मैंने इकट्ठा किया था । इससे मुझे अपने लेखों की कटिंग मिलाने, काट-छाँट करने तथा अपना अनुवाद सही करने में बड़ी सुविधा मिली । मैं सुमनजी का कृतज्ञ हूँ ।

अपने अनुवाद के विषय में मुझे दो बातें कहनी हैं—पहले तो मैं कई बातों में गांधीजी से पूर्णतः सहमत नहीं हूँ । दूसरे, 'हरिजन' तथा 'अछूत'-शब्दों के प्रयोग के विषय में मैंने केवल धार्मिक भाव का ध्यान न कर आवश्यकता तथा औचित्य का ही विचार रक्खा है । जान-बूझकर हर स्थान पर अछूत के लिये हरिजन नहीं लिखा है । साथ ही जहाँ पर आवश्यकता हुई, मूल के साथ एक वाक्य जोड़कर संबंध स्पष्ट कर दिया गया या अनावश्यकता होने पर निकाल दिया गया है ।

यह मेरी पहली अनूदित पुस्तक है । स्वच्छंद लिखनेवाले को अनुवाद में वैसी ही पराधीनता मालूम होती है, जैसे पक्षी को पिंजड़े में । अतएव अनुवाद में त्रुटियाँ होना स्वाभाविक है । आशा है, हमारे पाठक इसके लिये क्षमा करेंगे । अनुवाद को ठीक करने के लिये, संशोधन के कष्टों के लिये, मैं संपादकजी का कृतज्ञ हूँ, और उन्हें सावधानी से संपादन करने तथा लेखों के ऊपर अपने नोट देकर उन्हें अधिक स्पष्ट बनाने के लिये धन्यवाद देता हूँ ।

ईश्वर करे, यह पुस्तक उन भद्र विचारकों के मन में कुछ प्रकाश उत्पन्न करे, जो अब भी 'अस्पृश्य' कहलानेवालों को छूना पाप समझते हैं ।

जालिपादेवी, काशी }
१५—२—३४ }

वीरप्राणानंद वर्मा

विषय-सूची

हरिजन

हरिजन तें चाहो भजन, तौ हरि-भजन फ़िज़ूल,
जन द्वारा ही करत हैं राजन मिलन कबूल।

❀ ❀ ❀

कलिजुग ही मैं मो मिली अति अचरजमय बात—
होत पतितपावन पतित छुवत पतित जब गात।

श्रीदुलारेलाल

अछूत-समस्या

अछूत-प्रथा और उसकी विषमताएँ

[१९२४ मे, बेलगाँव मे, कांग्रेस-सप्ताह के अवसर पर, अछूत-सम्मेलन मे महात्मा गाधी ने एक बड़ा प्रभावशाली व्याख्यान दिया था। नीचे उसका अंशानुवाद दिया जा रहा है। इसको पढ़कर पाठकों को यह स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि गांधीजी के हरिजन-संबंधी विचारों को किसी प्रकार भी भङ्ग करना कितना अनुचित है। उनके विचार कितने ग्राह्य हैं।—संपादक]

मित्रो, अछूतोद्धार के विषय में अपनी सम्मति प्रकट करने के लिये मुझसे कहना एक प्रकार से अनावश्यक ही है। मैंने अगणित बार सार्वजनिक व्याख्यानों में कहा है कि यह मेरे हृदय की प्रार्थना है कि यदि मैं इस जन्म में मोक्ष न प्राप्त कर सकूँ, तो अपने अगले जन्म में भंगी के घर पैदा होऊँ। मैं 'जन्मना' तथा 'कर्मणा' दोनों रूप से 'वर्णाश्रम' में विश्वास रखता हूँ, किंतु भंगी को किसी भी रूप में हीन 'आश्रम' का नहीं समझता। मै ऐसे बहुत-से भंगियों को जानता हूँ, जो आदर तथा श्रद्धा के पात्र है। और, ऐसे बहुत-से ब्राह्मणों को भी जानता हूँ, जिनके प्रति ज़रा भी श्रद्धा तथा आदर का भाव होना कठिन ही है। मेरे उपर्युक्त विचार होने के कारण मेरी धारणा है कि अछूतों के बीच में ही जन्म लेने से मैं उनकी अधिक लाभदायक सेवा कर सकूँगा, तथा दूसरे समुदायों से उनकी ओर से बोल सकूँगा।

किंतु जिस प्रकार मैं यह नहीं चाहता कि छूत कहलानेवाले अछूतों से घृणा करें, उसी प्रकार मैं यह भी नहीं चाहता कि अछूत के हृदय में छूत के प्रति कोई दुर्भाव हो। मैं नहीं चाहता कि पश्चिम के समान वे हिंसा द्वारा अपना अधिकार प्राप्त कर लें। मैं स्पष्ट रूप से अपने सामने ऐसा समय देख सकता हूँ, जब संसार में शक्ति के फ़ैसले से ही अपना अधिकार प्राप्त करना संभव न होगा। इसीलिये जिस प्रकार मैं ब्रिटिश सरकार के विषय में कहता हूँ, उसी प्रकार अपने अछूत भाइयों से आज कहता हूँ कि यदि वे अपनी कार्य-सिद्धि के लिये शक्ति की शरण लेंगे, तो अवश्य ही असफल होंगे।

मैं हिंदू-धर्म का उद्धार करना चाहता हूँ। मैं अछूतों को हिंदू-समाज का अंतर्भाग समझता हूँ। जब मैं एक भी भंगी को हिंदू-धर्म के दायरे के बाहर जाते देखता हूँ, तो मुझे बड़ा क्लेश होता है, किंतु मेरा यह विश्वास है कि समुदाय के सभी भेद मिटाए नहीं जा सकते। मैं गीता में भगवान् कृष्ण द्वारा सिखलाए गए समानता के सिद्धांत में विश्वास करता हूँ। हमें गीता की सीख है कि चारो जातियों—वर्णों के लोगों को समान भाव से देखना चाहिए। पर उसने ब्राह्मण तथा भंगी के लिये एक ही 'धर्म' नहीं बतलाया है। उसका तो कहना है कि जिस प्रकार ब्राह्मण की पांडित्य के लिये प्रतिष्ठा होती है, उसी प्रकार भंगी की भी होना चाहिए। इसलिये हमारा कर्तव्य है कि इस बात का ध्यान रक्खें कि अछूतों को यह महसूस न होने पावे कि उनसे हिकारत की जाती है। चाहे ब्राह्मण हो या भंगी, यदि वह एक ही ईश्वर की पूजा करता है, तथा अपने शरीर और मन को स्वच्छ रखता है, तो मैं उसे किस प्रकार दो निगाहों से देख सकता हूँ। कम-से-कम मैं तो यह पाप समझता हूँ कि भंगी को रसोई का बचा-खुचा जूठा भोजन दिया जाय, और आवश्यकता पड़ने पर उसकी सहायता न की जाय।

मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर दूँ। यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि हिंदू-धर्म अछूत-प्रथा के वर्तमान रूप की कोई शास्त्रीय आज्ञा नहीं है, पर किन्हीं दशाओं में, एक सीमित रूप में, अछूत-प्रथा को स्वीकार किया गया है। उदाहरण के लिये जब कभी मेरी माता कोई गंदी चीज़ छूती थीं, तो अछूता हो जाती थीं, और स्नान द्वारा उन्हें शुद्ध होना पड़ता था। कोई अपने जन्म से अछूत हो सकता है, यह मानना मैं एक वैष्णव होने के नाते अस्वीकार करता हूँ। धर्म में जिस प्रकार के अछूतपन की आज्ञा है, वह प्रकृतितः अस्थायी है— कर्म तथा क्रिया द्वारा शुद्धि-अशुद्धि होती है, न कि कर्ता द्वारा। इतना ही नहीं, ठीक जिस प्रकार बचपन में अपनी माताओं की सेवाओं, हमारे मैले-कुचैलेपन को दूर करने की शुश्रूषाओं के लिये हम लोग उनकी प्रतिष्ठा करते हैं, ठीक उसी प्रकार समाज की सेवा करने के कारण भंगी का सबसे अधिक आदर होना चाहिए।

इसके साथ एक दूसरी बात भी है। मैं सहभोज तथा अंतर्जातीय ब्याह को अछूत-प्रथा दूर करने के लिये अनिवार्य नहीं मानता। मैं वर्णाश्रम-धर्म में विश्वास करता हूँ, पर भंगियों के साथ खाना भी खाता हूँ। मैं नहीं कह सकता कि मैं संन्यासी हूँ, क्योंकि इस कलियुग में कोई संन्यासी के लिये निर्धारित नियमों का पालन कर सकता है, इसमें मुझे घोर संदेह है। पर मैं जान-बूझकर संन्यास की ओर अग्रसर हो रहा हूँ। इसलिये मेरे लिये बंधन का पालन करना अनावश्यक ही नहीं, प्रत्युत हानिकर भी है। अंतर्जातीय ब्याह का प्रश्न मेरी ऐसी दशावाले के लिये उठता ही नहीं। मेरे लिये यही कहना पर्याप्त है कि मेरी योजना में अंतर्जातीय ब्याह नहीं है। मैं आपको यह बतला देना चाहता हूँ कि मेरे समाज में सब लोग एक साथ (एक दूसरे के यहाँ) भोजन नहीं करते। हमारे कतिपय वैष्णव-परिवारों में दूसरे का बर्तन या दूसरे की

अँगीठी की आग भी काम में नहीं लाते। आप इस प्रथा को अंध-विश्वास कह सकते हैं, पर मैं इसे ऐसा नहीं समझता। यह तो निश्चित है कि इससे हिंदू-धर्म की कोई हानि नहीं हो रही है। मेरे आश्रम में एक 'अछूत' साथी अन्य आश्रमवासियों के साथ बिना किसी भेद-भाव के भोजन करता है, पर मैं आश्रम के बाहर किसी व्यक्ति को ऐसा करने की सलाह नहीं देता। साथ ही आप यह भी जानते हैं कि मैं मालवीयजी की कितनी इज़्ज़त करता हूँ। मैं उनके पैर धो सकता हूँ। पर वह मेरा छुआ खाना नहीं खा सकते। क्या मैं इसे अपने प्रति उनकी उपेक्षा समझकर इससे बुरा मानूँ? हर्गिज़ नहीं, क्योंकि मैं जानता हूँ कि वह उपेक्षा के कारण ऐसा नहीं करते।

मेरा धर्म मुझे 'मर्यादा-धर्म' का पालन करना सिखलाता है। प्राचीन युग के ऋषियों ने इस विषय में खूब छान-बीन तथा गवेषणा द्वारा कुछ महान् सत्यों का अनुसंधान किया था। इन सत्यों की समानता किसी भी धर्म में नहीं वर्तमान है। उनमें से एक यह भी है कि उन्होंने मनुष्य के आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिये हानिकर कतिपय खाद्य पदार्थों का पता लगाया था। अतः उन्होंने उनके सेवन का निषेध किया है। मान लो, किसी को खूब यात्रा करनी है, और उसे भिन्न रीति-रिवाज तथा भोजन करनेवाले व्यक्तियों के बीच में रहना है—यह जानकर कि जिस समुदाय के बीच में रहना होता है, उसके व्यक्तियों की समाज-प्रथा नए व्यक्ति पर कितना दबाव डाल सकती है, ऐसी विषम समस्याओं का सामना करने के लिये उन्होंने 'मर्यादा-धर्म' की रचना की। मैं उसे हिंदू-धर्म का अनिवार्य अंग नहीं मानता। मैं एक ऐसे समय की भी कल्पना कर सकता हूँ, जब ये बाधाएँ बिलकुल ही उठा दी जायँगी। पर अछूतोद्धार-आंदोलन में जिस प्रकार का सुधार करने

की सलाह दी जा रही है, उसमें सहभोज तथा अंतर्जातीय विवाह की बाधा भी उठा देने की बात नहीं कही जा रही है। अपने ऊपर पाखंड तथा अव्यवस्थित चित्तवाला होने का दोष लगने का भय होने पर भी मैं जनता से इनको एकदम दूर कर देने की सलाह न दूँगा। उदाहरणार्थ मैंने अपने लड़के को मुसलमान घरों में स्वेच्छा-पूर्वक भोजन करने दिया, क्योंकि मैं जानता हूँ कि वह इस बात की पूरी तरह से फ़िक्र रख सकता है कि क्या खाद्य है तथा क्या अखाद्य। मुसलिम घर में भोजन करने में मुझे स्वयं कोई एतराज़ नहीं, क्योंकि भोजन के विषय में अपने लिये मैंने बड़े कठोर नियम बना रक्खे हैं। मैं आपको अलीगढ़ की एक घटना बतलाता हूँ—मैं और स्वामी सत्यदेव, ख्वाजा साहब के मेहमान थे। स्वामी सत्यदेव मेरे विचारों से सहमत नहीं थे। मैंने आपस में बहुत कुछ तर्क-वितर्क किया, और स्वामी सत्यदेव से समझा दिया कि मेरे जिस प्रकार के विचार हैं, उनको रखते हुए एक मुसलमान के हाथ का भोजन अस्वीकार करना उतना ही अनुचित है, जितना भोजन कर लेना स्वामी के लिये 'मर्यादा का उल्लंघन' करना होगा। अतएव स्वामी के लिये भोजन बनवाने का अलग से प्रबंध करना पड़ा। इसी प्रकार जब मैं बारी साहब का मेहमान हुआ, तो उन्होंने एक ब्राह्मण-रसोइया तैनात किया, और उसे सख़्त हिदायतें दीं कि रसोई का सब सामान बाज़ार से लाकर रसोई बनाया करे। इसका कारण उन्होंने यह बतलाया कि वह नहीं चाहते कि जनता के मन में इस प्रकार का कुछ भी संदेह हो कि वह मुझे तथा मेरे साथियों को मर्यादा-भ्रष्ट करना चाहते हैं। इस एक घटना ने मेरी नज़रों में बारी साहब को बहुत ऊँचा उठा दिया।

मैं इस एक खान-पान की बात पर इतने विस्तार के साथ इसी वास्ते बोल गया कि मैं आपके सामने यह स्पष्ट कर देना चाहता

हूँ कि आपके (अछूतों के) साथ या इस विषय में किसी दूसरे के साथ व्यवहार में कोई पाखंड हर्गिज़ नहीं बर्तना चाहता। मैं आपको अंधकार में रखना या झूठा लालच दिलाकर अपना समर्थन प्राप्त करना नहीं चाहता। मैं अछूत-प्रथा को इसलिये उड़ा देना चाहता हूँ कि उसका मूलोच्छेदन स्वराज्य-प्राप्ति के लिये अनिवार्य है, और मैं स्वराज्य चाहता हूँ। पर अपने किसी राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये मैं आपको नहीं मिलाना चाहता। मेरे सामने जो प्रश्न है, वह स्वास्थ्य से भी अधिक बड़ा है। मैं अछूत-प्रथा का इसलिये अंत करना चाहता हूँ कि यह आत्मशुद्धि के लिये आवश्यक है। अछूतों की शुद्धि की कोई आवश्यकता नहीं है, यह निरर्थक बात है, किंतु स्वयं मेरी तथा हिंदू-धर्म की शुद्धि अभीष्ट है। हिंदू-धर्म ने इस कुप्रथा को धार्मिक आज्ञा देकर एक बड़ा भारी पाप किया है, और मैं अपने शरीर पर ही ओढ़कर इस पाप का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ।

ऐसी दशा में मेरे कार्य के लिये, मेरे सामने दो ही मार्ग खुले हुए हैं—अहिंसा और सत्य। मैंने एक अछूत-बच्चे को अपना बच्चा बना लिया है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मैं अपनी स्त्री को अपने विचार से पूरी तरह सहमत नहीं कर सका हूँ। वह उसे उतना प्यार नहीं करती, जितना मैं। पर मैं उसका मत-परिवर्तन क्रोध द्वारा नहीं, प्रेम द्वारा ही कर सकता हूँ। यदि हमारे किसी आदमी ने आपका बुरा किया हो, तो मैं आपसे उसके लिये क्षमा माँगता हूँ। जब मैं पूना में था, अछूत-समुदाय के किसी व्यक्ति ने कहा था कि यदि हिंदू उनकी ओर से अपना व्यवहार नहीं बदलेंगे, तो वे ज़बर्दस्ती अपना अधिकार प्राप्त कर लेंगे। क्या इस प्रकार अछूतों की दशा सुधर सकती है? घोर सनातनी हिंदुओं का मत-परिवर्तन केवल धैर्य-पूर्ण तर्क तथा उचित व्यवहार से ही

हो सकता है। जब तक उनका मत-परिवर्तन नहीं होता, मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि धैर्य-पूर्वक अपनी वर्तमान दशा को सहन कीजिए। मैं आपके साथ खड़ा रहने, कंधा मिलाकर आपकी पीड़ाओं में हाथ बँटाने के लिये तैयार हूँ। जिस मंदिर में ऊँची जाति के लोग उपासना करते हैं, उसमें आपको भी उपासना का अधिकार मिलना ही चाहिए। स्कूलों में भी अन्य जाति के बच्चों के साथ आपके बच्चों को भी पढ़ने का अधिकार मिलना चाहिए। इस भूमि का सबसे बड़ा सरकारी ओहदा—वाइसराय तक का पद—भी आपको मिलने का अधिकार होना चाहिए। अछूत-प्रथा को मिटा देने की मेरी यही व्याख्या है।

पर इस कार्य में मैं आपकी सहायता अपने धर्म द्वारा प्रदर्शित उपाय से ही कर सकता हूँ, न कि पश्चिमीय उपाय से। इस उपाय से मैं हिंदू-धर्म की रक्षा नहीं कर सकता। आपका उद्देश्य पवित्र है। किसी पवित्र कार्य की सिद्धि क्या शैतानी उपायों से हो सकती है ? मैं इसीलिये आपसे प्रार्थना करता हूँ कि अपनी दशा सुधारने के लिये पशु-बल के उपयोग का ध्यान छोड़ दीजिए। गीता का कथन है कि हृदय से ईश्वर-चिंतन करने से मोक्ष प्राप्त हो जाता है। चिंतन करना ईश्वर के दरबार में हाज़िरी देना है। यदि ईश्वर के दरबार में हाज़िरी देने से मोक्ष का सबसे बड़ा आनंद प्राप्त हो सकता है, तो ऐसा ही करने से अछूत-प्रथा का कितनी जल्दी नाश हो सकता है ! ईश्वर के दरबार में हाज़िरी देना अपनी पवित्रता बढ़ाना है। आइए, हम प्रार्थना द्वारा अपने को पवित्र कर लें, जिससे हम अछूत-प्रथा ही नहीं हटा देंगे, बल्कि स्वराज्य भी शीघ्र सुलभ बना लेंगे।

पैशाचिक प्रथा

['यंग इंडिया' में प्रकाशित महात्माजी के एक मर्म-पूर्ण लेख का यह अनुवाद है। इसमें गांधीजी ने बड़े तर्क-पूर्ण शब्दों में अछूत-प्रथा के समर्थकों को उनकी गहरी भूल समझाई है।—संपादक]

दक्षिण के एक देशी भाषा के पत्र में एक विद्वान् पंडित की लेखनी से लिखा एक लेख प्रकाशित हुआ है। एक मित्र ने उसका सारांश मेरे पास भेजा है। अछूत-प्रथा को जारी रखने के लिये पंडित के तर्कों का उन्होंने इस प्रकार सारांश लिखा है—

(१) आदिशंकर ने एक बार एक चांडाल से यह कहा था कि वह उनसे दूर रहे, तथा त्रिशंकु को जब चांडाल बनने का शाप मिला, तब सभी लोग उसको त्यागने लगे। ये पौराणिक सत्य हैं, और इनसे यह प्रमाणित होता है कि अछूत-प्रथा कोई नई वस्तु नहीं है।

(२) आर्य-जाति से बहिष्कृत को ही 'चांडाल' कहते हैं।

(३) अछूत स्वयं अछूत-प्रथा के पाप के भागी हैं।

(४) कोई अछूत इसीलिये होता है कि वह पशु-हत्या करता रहता है, रात-दिन उसे मांस, रक्त, हड्डी और मैले से काम रहता है।

(५) जिस प्रकार कसाईखाना, ताड़ीखाना और भठियारखाना समाज से अलग तथा बाहर रक्खा जाता है, उसी प्रकार अछूत को भी अलग रखना चाहिए।

(६) इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि अछूत को परलोक का सुख कभी नहीं प्राप्त होता।

(७) गांधी अछूतों को छू सकता है, इसी प्रकार वह उपवास भी कर सकता है। हम न तो उपवास कर सकते और न अछूतों को छू सकते हैं।

(८) मनुष्य की उन्नति तथा विकास के लिये अछूत-प्रथा या अछूतपन आवश्यक है।

(९) मनुष्य में आकर्षक शक्ति होती है। यह शक्ति दूध के समान है। अनुचित संपर्क से यह दूषित हो जायगी। यदि मुश्क और प्याज़ एक साथ रक्खा जा सकता है, तो ब्राह्मण और अछूत भी एक साथ मिलाए जा सकते हैं।

इन मुख्य तर्कों का संक्षेप मेरे संवाददाता ने भेजा है। अछूत-प्रथा अनेकों सिरवाली पिशाचिनी है, इसलिये यह आवश्यक है कि जब-जब पिशाचिनी सिर उठाए, उसका सामना किया जाय। पौराणिक कथाओं का वर्तमान परिस्थिति से क्या संबंध है, बिना यह जाने ये कहानियाँ बड़ी भयंकर हो जाती हैं। शास्त्रों में वर्णित हरएक लंबी-चौड़ी बात के अनुसार यदि हम अपने आचरण का नियंत्रण करें, तो ये बातें मौत के फंदे के समान हो जायँ। इन शास्त्रीय बातों से हमें केवल इतनी ही सहायता मिलती है कि हम मुख्य प्रश्नों पर तर्क-वितर्क कर सकते हैं। यदि किसी धार्मिक ग्रंथ में किसी प्रसिद्ध व्यक्ति ने ईश्वर तथा पुरुष के विरुद्ध पाप किया, तो इसका यह अर्थ नहीं कि हम भी वही पाप दुहराएँ। हमें केवल यही जान लेना—सीख लेना पर्याप्त है कि संसार में केवल एक ही वस्तु मुख्य है और वह सत्य है, तथा सत्य ही ईश्वर है। यह कहना असंगत है कि एक बार युधिष्ठिर भी ऐसे फंदे में फँस गए थे कि उनको झूठ बोलना पड़ा था। यह जानना अधिक संगत है कि जब एक बार वह झूठ बोल गए, उसी समय उनको उसका दंड सहना पड़ा, और उनका महान् यश अथवा नाम भी उनकी रक्षा नहीं कर

सका। इसीलिये हमें यह बतलाना असंगत है कि आदिशंकर ने एक बार चांडाल के स्पर्श से अपने को बचाया। हमारे लिये इतना ही जानना पर्याप्त है कि जिस धर्म में अपने समान सबके साथ व्यवहार करने की शिक्षा दी जाती है, वह कभी एक भी जीव के साथ अमानवीय व्यवहार बर्दाश्त नहीं कर सकता, एक समुदाय-भर की बात तो दूर रही। इसके अलावा हमारे पास सभी बातें भी तो मौजूद नहीं हैं, जिससे हम यह निर्णय कर सकें कि आदिशंकर ने क्या किया और क्या नहीं किया। इसके अलावा क्या हम शास्त्र में 'चांडाल'-शब्द के उपयोग का अर्थ जानते हैं? अवश्य इसके कई अर्थ हैं। एक अर्थ है पातकी। पर यदि सभी पापियों को चांडाल या अछूत समझा जाने लगे, तो मुझे भय है कि हम सभी, स्वयं पंडित भी, इस अछूत के पाश में पड़ जायँगे। यह अछूत-प्रथा पुरानी है, इसे कौन अस्वीकार कर सकता है। पर यदि यह प्रथा बुरी है, तो इसकी प्राचीनता की दुहाई इसका समर्थन नहीं करा सकती!

यदि अछूत आर्य-जाति के निकाले अंग हैं, तो यह जाति के लिये बड़ी कलंक की बात है। यदि आर्यों ने अप्रगतिशीलता के विचार से किसी समुदाय को जाति-बाहर कर दिया हो, तो कोई कारण नहीं कि बिना कारण का विचार किए, अब उस समुदाय की संतानों को भी वही दंड दिया जाय।

यदि अछूतों में भी आपस में 'अछूतपन' होता है, तो इसका यही कारण है कि दूषण सीमित नहीं, पर व्याप्त प्रभावशाली होता है। अछूतों में भी अछूत-प्रथा का होना संस्कृत हिंदुओं के लिये यह और भी आवश्यक बना देता है कि वे शीघ्रातिशीघ्र इस शाप से मुक्त हो जायँ।

यदि पशु-हत्या तथा मांस के व्यापार के कारण अथवा मल-मूत्र

छूने से कोई अछूत होता है, तो हरएक डॉक्टर, हरएक दाई, हर-एक ईसाई और मुसलमान को, जो भोजन या बलि के लिये पशु-हत्या करते हैं, अछूत हो जाना चाहिए।

यह तर्क कि क़साईख़ाने तथा भठियारख़ाने की तरह अछूतों को भी त्याग देना तथा अलग रखना चाहिए, उनके प्रति घोर अन्याय व्यक्त करता है। क़साईख़ाने और ताड़ीख़ाने अलग हैं, तथा कर दिए जाते हैं, पर क़साई और ताड़ी बेचनेवाले अलग नहीं किए जाते। वेश्याओं को अलग कर देना चाहिए, क्योंकि उनका पेशा समाज के स्वास्थ्य के लिये हानिकर तथा दूषित है। अछूतों का पेशा समाज के लिये हानिकर नहीं, बल्कि उसके स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है।

यह कहना गुस्ताख़ी की हद है कि अछूत को परलोक की सुवि-धाएँ नहीं प्राप्त हो सकतीं! यदि परलोक में उन्हें स्थान न देना संभव है, तो यह भी संभव है कि अछूत-प्रथा के कट्टर समर्थक उन्हें वहाँ भी अलग करवा सकते हैं।

यह कहना जनता की आँखों में धूल झोंकना है कि एक गांधी अछूत को छू सकता है, पर सब नहीं। मानो 'अछूत' की सेवा और उसे छूना इतना हानिकर है कि इसके लिये अछूतरूपी कीड़े से न प्रभा-वित होनेवाले व्यक्ति ही चाहिए। ईश्वर ही जानता होगा कि मुसलमानों को क्या दंड मिलनेवाला है। अथवा उन ईसाई आदि समूहों को क्या दंड मिलेगा, जो अछूत-प्रथा में विश्वास नहीं रखते!

पाशविक आकर्षक शक्ति का बहाना एकदम निरर्थक है। ऊँची जाति के सभी लोग मुश्क की तरह मधुर सुगंधवाले नहीं होते, न सभी अछूतों के शरीर से दुर्गंध आती है। ऐसे हज़ारों अछूत हैं, जो सदैव 'ऊँची जाति' के कहे जानेवाले लोगों से सर्वांशतः महान् होते हैं।

यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि अछूत-प्रथा के विरुद्ध लगातार पाँच वर्ष तक प्रचार करने पर भी ऐसे विद्वान् आदमी निकल आते हैं, जो इस अनैतिक तथा बुरी प्रथा का समर्थन करते हैं। एक विद्वान् भी अछूत-प्रथा का समर्थन कर सकता है, इससे इस प्रथा की महत्ता नहीं बढ़ती। केवल यह देखकर निराशा होती है कि केवल विद्या से ही चरित्र नहीं बनता, न बुद्धि-विभ्रम दूर होता है।

मैं पहले सुधारक हूँ

[६ अगस्त, १६३१ के 'यंग-इंडिया' में, अहमदाबाद में, हरिजनों के लिये सर चुनीभाई का मंदिर-द्वार खोलते समय के महात्मा गांधी के व्याख्यान का अधिकांश प्रकाशित हुआ था। इस व्याख्यान से लोगों की यह शंका निवारण हो जाती है कि गांधीजी वास्तव में हरिजन-सेवा को इतना महत्त्व क्यों देते हैं, तथा राजनीतिक कार्य से भी अधिक तत्परता के साथ यह कार्य क्यों कर रहे हैं।—संपादक]

अछूत कहनेवाले भाइयों की सेवा मेरे लिये अन्य किसी राजनीतिक कार्य से कम नहीं। अभी एक क्षण पूर्व मेरे दो पादरी मित्रों ने भी यही भेद बतलाया था, फलतः मैंने उन्हें हल्की झिड़की भी दी थी। मैंने उन्हें समझाया कि मेरा समाज-सुधार का कार्य राजनीतिक कार्य से किसी प्रकार कम या उससे हेय नहीं है। सच तो यह है कि जब मैंने यह देखा कि बिना राजनीतिक कार्य के सामाजिक सेवा नहीं हो सकती, मैंने इसे अपनाया, और उसी सीमा तक, जहाँ तक वह मेरी समाज-सेवा की सहायता कर सकता है। इसीलिये मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मेरे लिये सामाजिक सुधार अथवा आत्मशुद्धि का यह कार्य शुद्ध राजनीतिक कहलानेवाले कार्य से कहीं अधिक प्रिय है।

हरिजन-सेवा

'अछूतों' की सेवा अथवा उनके साथ न्याय करने का क्या अर्थ है? इसका केवल यही अर्थ है कि सदियों से मियाद पूरी हो जानेवाले क़र्ज़ को चुका देना, तथा और युगों से हम जिस पाप के

भागी बन रहे हैं, उसका कुछ प्रायश्चित्त करना। अपने ही रक्त-मांस के संबंधी का ऋण न चुकाना हमारा पाप है, और उसका अपमान करना। हमने अपने इन अभागे बंधुओं के प्रति ऐसा ही व्यवहार किया है, जैसा एक नर-पिशाच अपने अन्य भाइयों (मनुष्यों) के साथ करता है। और हमने अछूतोद्धार का जो कार्य-क्रम बनाया है, वह हमारे महान् पैशाचिक अन्याय का कुछ अंशों में प्रायश्चित्त-मात्र है। चूँकि यह कार्य मूलतः प्रायश्चित्त अथवा आत्मशुद्धि की दृष्टि से किया जा रहा है, अतएव किसी भी दशा में इसमें भय अथवा पक्षपात की संभावना नहीं हो सकती। यदि हम इस भाव से यह कार्य करते हैं कि अछूत दूसरे मत को ग्रहण कर लेंगे, या वे हमारे ऊपर अपना क्रोध उतारेंगे, या हम एक राजनीतिक चाल के रूप में यह कार्य प्रारंभ करते हैं, तो हम हिंदू-धर्म के प्रति अपना अज्ञान प्रकट करते या युगों से हमारी सेवा करनेवाले ऋषि-मुनियों का अपमान करते हैं। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मैंने ही इस प्रश्न को कांग्रेस-कार्य-क्रम में इतना प्रमुख स्थान दिलाया, तथा मुझ पर आक्षेप करनेवाला व्यक्ति यह कह सकता है कि मैंने अछूतों के लिये चारा फेंका था। इसका मैं तुरंत यही उत्तर देता हूँ कि यह आक्षेप निराधार है। अपने जीवन के बहुत प्रारंभिक काल में ही मैं यह महसूस कर चुका था कि जिन्हें अपने हिंदू होने का विश्वास है, यदि वे हिंदू-धर्म पर गर्व करते हैं, तो उनको इस कुप्रथा को मिटाकर प्रायश्चित्त करना चाहिए। और, चूँकि कांग्रेस में हिंदुओं का बहुमत था, और उस समय राष्ट्र के सामने जो कार्य-क्रम रक्खा गया था, वह आत्मशुद्धि का था, अतएव मैं इस प्रश्न को कांग्रेस-कार्य-क्रम में इस भाव से आगे ले आया कि जब तक हिंदू इस धब्बे को मिटाने के लिये तैयार नहीं हैं, वे अपने को स्वराज्य के योग्य नहीं समझ सकते। इस

विश्वास की सार्थकता मेरे सम्मुख प्रत्यक्ष है। यदि अछूत-प्रथा का दाग़ लिए हुए ही आपको स्वाधिकार प्राप्त हो गया, तो, मेरा विश्वास है, आपके 'स्वराज्य' में अछूतों की और बुरी दशा होगी, क्योंकि इसका सीधा कारण यह होगा कि अधिकार के मद में हमारी-आपकी दुर्बलता तथा कमज़ोरियाँ और भी अधिक कठोर हो जायँगी। संक्षेप में, मेरी यही स्थिति है, सफ़ाई है, और मेरा सदैव यह मत रहा है कि यह 'आत्मशुद्धि' स्वराज्य के लिये अनिवार्य है। मैं आज इस तथ्य पर नहीं पहुँचा हूँ। जिस समय से मैंने स्वराज्य के विषय में विचार करना शुरू किया, उसी समय से मेरा यह मत रहा है। इसीलिये मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि उसने मुझे इस अवसर पर उपस्थित होने योग्य बनाया। मैंने सदैव ऐसे कार्य के अवसर को मूल्यवान् समझा है, और इसीलिये ऐसे अवसरों पर मैंने 'राजनीतिक' कहे जानेवाले कार्यों को ताक़ पर रख दिया है। मैं जानता हूँ, जिनको 'राजनीतिक' कहलानेवाली उत्तेजक वस्तु ही आकर्षित करती है, वे मुझ पर हँसेंगे, पर यह कार्य हृदय के सबसे निकट तथा सबसे प्रिय है।

अब परीक्षा का समय होगा!

इस मंदिर को खोलकर आपने (श्रीमती चुनीभाई) अपने कर्त्तव्य का पालन तथा आत्मशुद्धि का जो कार्य किया है, उसके लिये आपको बधाई देने की आवश्यकता नहीं। किंतु मुझे, जहाँ तक मैं सोच सकता हूँ, बधाई देने का अवसर शीघ्र ही उपस्थित होगा। इस मंदिर के ब्राह्मण-पुजारियों ने परिस्थिति को स्वीकार कर लिया है, पर यह संभव है, वे एक दिन आपके विमुख हो जायँ, और यह कहें कि उनसे मंदिर के पूजा-पाठ से कोई सरोकार नहीं है। यह भी संभव है कि समूचा ब्राह्मण-समुदाय, समग्र सनातनी

नागर-समुदाय आपके विरुद्ध षड्यंत्र कर ले। उस समय भी मैं आशा करता हूँ, और प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने निश्चय पर दृढ़ रहेंगे, और यह सोचकर प्रसन्न होंगे कि उसी दिन मंदिर में शिव की पत्थर की मूर्ति में वास्तविक जीवन का, ईश्वर की जीवित सत्ता का संचार हो गया है। आपके प्रायश्चित्त की वह चरम सीमा होगी। और, जिस दिन आपका समाज इस आवश्यक आत्मशुद्धि का कार्य करने के लिये आपको जाति बाहर कर देगा, मैं आपको हृदय से बधाई दूँगा।

हिंदुओं के लिये

आज जो यहाँ पर उपस्थित हैं, उनसे मैं कह देना चाहता हूँ कि हमारे सिर पर पाप का जो बोझ लदा हुआ है, उसी से हम स्वराज्य नहीं प्राप्त कर रहे हैं। यदि सभी 'छूत' कहलानेवाले हिंदू अपने 'अछूत' कहलानेवाले भाइयों के प्रति अन्याय का प्रायश्चित्त करें, तो वे देखेंगे कि स्वराज्य आप-से-आप हमारे हाथों में आ जाता है। और, कृपा कर यह भी समझ लें कि केवल शारीरिक छुआछूत दूर करने से ही काम नहीं चल सकता।

अछूत-प्रथा के अंत होने का अर्थ है जन्म से ही किसी को बड़ा-छोटा मानने के भेद-भाव का मिटा देना। वर्णाश्रम-धर्म बड़ा सुंदर धर्म है, पर यदि इसका उपयोग सामाजिक बड़प्पन के प्रतिपादन में होता है, तो यह बड़ी भयंकर बात हो जायगी। अछूत-प्रथा का अंत केवल इस जीवित विश्वास के आधार पर होना चाहिए कि ईश्वर की दृष्टि में सब लोग एक हैं, तथा स्वर्ग में बैठा परमपिता हम सबके साथ बराबर तथा समान रूप से न्याय करेगा।

यह तो एक आदमी का निजी मंदिर है। यदि इसका द्वार अछूतों के लिये खुल जाता है, तो सार्वजनिक मंदिर का द्वार कितने समय तक

बंद रहेगा। आज का अवसर हरएक हिंदू की आँख खोलनेवाला होगा। यह शुभ मुहूर्त उस क्रिया को प्रारंभ करता है, जिसके द्वारा सभी हिंदू-मंदिरों के द्वार अछूतों के लिये खुल जायँगे, किंतु अन्य बातों के समान इस दशा में भी मैं ज़ोर-ज़बर्दस्ती से बचने का अनुरोध करूँगा। कुछ समय पूर्व हम बड़ी जड़ता-पूर्वक इस प्रथा से चिपटे हुए थे, किंतु आज हम इसके प्रति उपेक्षित-से हो रहे हैं। वह समय दूर नहीं, जब वह उपेक्षा ऐसी जागृति में परिणत हो जायगी, जब हम आत्मशुद्धि के कर्तव्य-भाव से प्रेरित होकर स्वेच्छया यह कार्य करने लगेंगे। पंद्रह वर्ष पूर्व इस प्रकार की उपेक्षा या ऐसी दशा को बर्दाश्त कर लेना भी असंभव था। हमें यह आशा करनी चाहिए, तथा इसके लिये प्रार्थना करना चाहिए कि अब दूसरा पग होगा इच्छा-पूर्वक आत्मशुद्धि का यह कार्य करना।

अभी कल ही मेरे एक मित्र ने मुझे सलाह दी थी कि अछूत अथवा 'अंत्यज' के लिये 'हरिजन' शब्द का उपयोग करना चाहिए। सनातनी नागर ब्राह्मण-समाज के श्रीनरसिंह मेहता-नामक महान् साधु ने अपने समाज के मत की अवहेलना कर, अंत्यजों को अपनाकर, उनके लिये सर्व-प्रथम इस शब्द का उपयोग किया था। इतने बड़े साधु के प्रयोग से शुद्ध किए हुए शब्द को अपनाने में मुझे बड़ा हर्ष होता है, पर मेरे लिये इसका अर्थ आपकी कल्पना से कहीं अधिक गंभीर है। मेरे लिये, अपनी तुलना में, 'अंत्यज' वास्तव में 'हरिजन' है—ईश्वर का पुरुष है, और हम 'दुर्जन' हैं, क्योंकि हमें आराम तथा सफ़ाई से रखने के लिये वह परिश्रम करता और अपने हाथ को गंदा करता है। हमें तो उसे दबाने में ही आनंद आता है। इन अंत्यजों के सिर जिस दुर्बलता तथा दूषण का हम दोष मढ़ते हैं, उसकी पूरी ज़िम्मेदारी हमारे

सिर है। हम अब भी हरिजन हो सकते हैं, पर इसके लिये हमें पहले उनके प्रति अपने अन्यायों के लिये हार्दिक पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

दलित जातियाँ

[हरिजनों के दुःखों का निबटारा क्या इस बात से हो जायगा कि वे हिंदू-धर्म छोड़ दें ? अन्य धर्मवाले हाथ बढ़ाए हरिजनों को अपनाने के लिये तैयार हैं। क्या वे उनका उद्धार कर लेंगे ! इस प्रश्न का बड़ा सुंदर उत्तर गांधीजी के 'यंग-इंडिया' में प्रकाशित एक लेख 'दलित जातियाँ' से मिल जाता है। पाँचवाँ लेख उनके मद्रास के असहयोग-काल के एक व्याख्यान का अंशात्मक अनुवाद है। असहयोग, स्वराज्य तथा हरिजन-उद्धार का कार्य-क्रम गांधीजी ने किस खूबी से एक संबद्ध कार्य के रूप में समझाया है।—संपादक]

विवेकानंद पंचमों को 'दबाई हुई' जातियाँ कहा करते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि विवेकानंद का यह विशेषण बिलकुल उपयुक्त है। हमने उनको दबाया है, फलतः हम भी दबाए गए हैं। गोखले के शब्दों में—न्यायी ईश्वर ने हमें 'साम्राज्य का पंचम' बनाकर हमारे अन्याय का दंड दिया है। हैरान और रुष्ट होकर एक संवाद-दाता मुझसे कातरता-पूर्वक पूछता है कि मैं पंचमों के लिये क्या कर रहा हूँ। "अँगरेज़ों से उनका रक्त रंजित हाथ साफ़ करने के लिये कहने के पहले क्या हम हिंदुओं को ख़ून से सना अपना हाथ नहीं धो डालना चाहिए।" यह सामयिक तथा उचित प्रश्न है। यदि गुलाम राष्ट्रों का कोई व्यक्ति इन दबाई जातियों को अपने उद्धार के पहले मुक्त कर दे, तो मैं इसे पसंद करूँगा। मैं आज ही ऐसा करने के लिये तैयार हो जाऊँगा। किंतु यह एक असंभव कार्य है। एक दास को इतनी भी स्वाधीनता नहीं होती कि वह कोई उचित

कार्य कर सकें। मेरे लिये यह सर्वथा न्यायोचित है कि भारत में विदेशी वस्त्रों का आना रोकूँ, पर ऐसा करने की शक्ति मुझ में नहीं है। यदि मेरे पास सचमुच राष्ट्रीय व्यवस्थापक सभा होती, तो मैं हिंदू-गुस्ताख़ी का जवाब दबाई जातियों के लिये ही ख़ासतौर से प्रयोग में लाने के लिये अच्छे और ख़ास कुएँ बनवाकर देता, उनके लिये अनेक और कहीं अच्छे स्कूल बनवा देता, इस प्रकार दबाई जाति का एक भी व्यक्ति ऐसा न रह जाता, जिसके बच्चे की शिक्षा के लिये स्कूल का अभाव होता। पर मुझे अच्छे अवसर की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

तब तक क्या ये दलित जातियाँ अपने भाग्य पर छोड़ दी जायँगी, ऐसा हर्गिज़ न होगा। मुझसे जहाँ तक बन पड़ता है, मैं हर प्रकार से अपने पंचम भाई की सेवा करता आया हूँ, और करूँगा।

राष्ट्र के इन उत्पीड़ित व्यक्तियों के लिये केवल यही मार्ग खुला हुआ है। धैर्य छोड़कर वे गुलामों की सरकार की सहायता माँग सकते हैं। यह सहायता उन्हें मिल जायगी, पर वे जलती कड़ाई में से अग्नि में गिर जायँगे। आज वे दासों के दास हैं। सरकारी सहायता माँगने पर उनसे उन्हीं के संबंधियों तथा साथियों को दबाने के लिये कहा जायगा। स्वयं उनके प्रति पाप किए जाने के बदले वे स्वयं पापी बन जायँगे। मुसलमानों ने ऐसा करने की चेष्टा की, और असफल हुए। उन्होंने यह देख लिया कि वे पहले से भी अधिक ख़राब हालत में हैं। अज्ञानता-पूर्वक सिक्खों ने भी यही किया, और वे भी लाभ उठाने में असफल रहे। आज भारत में सिक्खों के समान कोई भी असंतुष्ट समुदाय नहीं है। इसलिये सरकारी सहायता से यह समस्या हल नहीं हो सकती।

दूसरा उपाय यह हो सकता है कि इस समय दलित हिंदू-समाज को छोड़कर मुसलमान या ईसाई हो जायँ। यदि धर्म-परिवर्तन से

इहलौकिक सुख प्राप्त हो सकता हो, तो मैं निस्संकोच इसकी सलाह देने के लिये तैयार हूँ। पर धर्म तो हृदय की वस्तु है। कोई भी शारीरिक असुविधा धर्म-परित्याग का कारण नहीं बन सकती। यदि पंचमों के साथ पाशविक व्यवहार हिंदू-धर्म का अंग होता, तो वह उन्हीं के लिये, पर मेरे-ऐसे के लिये महान् कर्तव्य होता, जो कि धर्म ऐसी वस्तु को भी अंध-विश्वास की वस्तु बनाकर उसके पवित्र नाम की ओट में हरएक पाप को छिपाना नहीं चाहते। किंतु मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि अछूत-प्रथा हिंदू-धर्म का अंग नहीं है। यह उसका मैल है, जिसको हर प्रकार से चेष्टा कर मिटा देना चाहिए। और, इस समय ऐसे हिंदू-सुधारकों की बहुत बड़ी संख्या मौजूद है, जो हिंदू-धर्म से इस धब्बे को मिटा देने के लिये तुल गए हैं। अतः मेरा कहना है कि धर्म-परिवर्तन इस समस्या को किसी प्रकार भी नहीं मिटा सकता।

पंचम

[मद्रास में पंचमों की समस्या का निबटारा कैसे हो। उनके प्रति बड़ी निर्दयता का व्यवहार होता है। गांधीजी का विचार नीचे दिया जाता है।—संपादक]

मद्रास-प्रांत के समान अछूतों के प्रति और कहीं भी इतनी निर्दयता का व्यवहार नहीं होता। उसकी छाया-मात्रा से ही ब्राह्मण अपवित्र हो जाता है। वह ब्राह्मणों की सड़क से जा भी नहीं सकता। अब्राह्मण भी उसके साथ कोई अच्छा सलूक नहीं करते। इन दो के बीच में, पंचम कहलानेवाला अछूत पिसकर भर्ता हो जाता है। और, फिर भी मद्रास ऊँचे मंदिरों और प्रगाढ़ धार्मिक भक्ति की भूमि बना है। लंबी टीका, लंबी चुटिया तथा मुंडे सिर लोग ऋषियों के समान मालूम होते हैं। पर ऐसा प्रतीत होता है कि इन बाहरी दिखावे में उनके धर्म का कोष ख़ाली हो गया है। शंकर और रामानुज-ऐसे धर्मध्वजियों को उत्पन्न करनेवाली भूमि में पंचमों के प्रति ऐसी डायरशाही समझ में नहीं आती। पर भारत के इस भाग में, अपने ही संबंधियों के प्रति, ऐसा दुर्व्यवहार देखते हुए भी—ऐसा शैतानी व्यवहार देखते हुए भी—इन दाक्षिणात्यों में मेरा विश्वास बना ही है। मैंने उनकी प्रायः सभी बड़ी सभाओं में साफ़-साफ़ कह दिया है कि जब तक हम अपने समाज से इस शाप को नहीं मिटा देते, स्वराज्य नहीं हो सकता।

मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया है कि संपूर्ण संसार के समाज में हमारे साथ कोढ़ी के समान व्यवहार इसीलिये होता है कि हम अपनी

ही जाति के पाँचवें भाग के साथ ऐसा ही सलूक करते हैं। असहयोग अँगरेज़ों में ही नहीं, हममें भी हृदय-परिवर्तन के लिये एक प्रार्थना-मात्र है। अवश्य मैं तो पहले अपने लोगों में, और फिर, समय पाकर, अँगरेज़ों में हृदय-परिवर्तन की आशा करता हूँ। ऐसा राष्ट्र, जो सदियों के अभिशाप को एक वर्ष में फेंक सकता है, ऐसा राष्ट्र, जो वस्त्रों के समान मदिरा के व्यसन को त्याग सकता है, ऐसा राष्ट्र, जो अपने मूल-उद्योग को पुनः अपना सकता है तथा एक वर्ष में ६० करोड़ रुपए का कपड़ा केवल अपने फ़ालतू समय में तैयार कर सकता है, अवश्य ही बदला हुआ राष्ट्र कहलाएगा। उसका परिवर्तन संसार पर प्रभाव डालेगा। खिल्ली उड़ानेवाले के लिये भी वह दैवी सत्ता तथा प्रतिभा का विश्वासोत्पादक प्रदर्शन कर सकता है। और, इसीलिये मैं कहता हूँ कि यदि भारत का इस प्रकार परिवर्तन हो सकता है, तो संसार में कोई भी शक्ति उसके स्वराज्य के अधिकार को अस्वीकार नहीं कर सकती। भारत के क्षितिज में चाहे कितना ही घना बादल क्यों न एकत्र हो जाय, मैं साहस-पूर्वक यह भविष्यवाणी करता हूँ कि जिस क्षण भारत को 'अछूतों' के प्रति अपने अत्याचार पर खेद होगा, तथा वह विलायती कपड़े का बहिष्कार कर लेगा, उसी समय वे ही अँगरेज़-अफ़सर, जिनका हृदय कठोर हो गया है, एक स्वतंत्र तथा साहसी राष्ट्र के रूप में उनका स्वागत करेंगे।

और, मेरा विश्वास है, यदि हिंदू चाहें, तो वे 'पंचम' कहलाने-वालों को मताधिकार दे सकते हैं, और जो अधिकार वे स्वयं अपने लिये चाहते हैं, उन्हें भी अपनी ओर से दे सकते हैं—मैं ऊपर कही बातों में भी पूरा विश्वास रखता हूँ। यह हृदय तथा दशा-परिवर्तन किसी पूर्व-निश्चित तथा यंत्रीय कार्य-क्रम से नहीं हो सकता। यह तभी संभव है, जब ईश्वर की कृपा होगी। यह कौन

अस्वीकार कर सकता है कि परमात्मा हमारे हृदय में अद्भुत परिवर्तन उत्पन्न कर रहा है। अस्तु, हरएक स्थान पर, हरएक कार्यकर्ता का यह कर्तव्य है कि अछूत बंधुओं से मित्रता का प्रतिपादन करे, और अहिंदू हिंदुओं से यह वकालत करें कि वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता, शंकराचार्य तथा रामानुज द्वारा वर्णित हिंदू-धर्म में किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह कितना ही पतित क्यों न हो, अछूत के समान व्यवहार करने का कोई अधिकार नहीं। हरएक कार्यकर्ता को नम्रतम रूप में सनातनियों से यह अनुरोध करना चाहिए कि यह भेद-भेद अहिंसा के भाव का उलटा है।

एक भयंकर सिद्धांत

[सत्याग्रह तथा दलितोद्धार का क्या संबंध है ? जड़ सनातनियों की जड़ता का किस प्रकार उत्तर दिया जाय ! सत्याग्रह से ? गांधीजी का सत्याग्रह क्या इस आंदोलन में भी लागू होता है ? ये प्रश्न इस सुंदर लेख से सुलझ जायँगे। ट्रावंकोर में गांधीजी ने उन दिनों एक व्याख्यान दिया था, जब वहाँ राजमाता महारानी का शासन था। यह लेख उसी का अधिकांश अनुवाद है।—संपादक]

भारत के इस अत्यंत सुंदर भाग में दूसरी बार आने पर मुझे कितना हर्ष हो रहा है, फिर भी यह सोचकर कि भारत के अन्य भागों में सबसे अधिक अछूत-भाव यहीं पर है, मुझे इतना दुःख होता है कि मैं उसे छिपा नहीं सकता। मुझे यह सोचकर बड़ा अपमानित होना पड़ा है कि एक प्रगतिशील हिंदू-राज्य में अछूतों के प्रति जो असुविधाएँ हैं, उनके स्पर्श तथा दृष्टि-मात्र से ही जो दोष लगता है, उसकी भयंकर दशा और कहीं भी नहीं है। मैं पूरी ज़िम्मे-दारी के साथ यह कहता हूँ कि यह अछूत-प्रथा एक ऐसा अभिशाप है, जो हिंदू-धर्म की जीवनी शक्ति को खाए जा रहा है। और, मैं प्रायः यह महसूस करता हूँ कि जब तक समुचित रीति से ख़बरदारी न करें, और अपने बीच में से इस शाप को न मिटा दें, हिंदू-धर्म के ही नाश हो जाने का डर बना रहेगा। इस तर्क तथा बुद्धि के युग में, इस चतुर्दिक् यात्रा के युग में, सब धर्म-मज़हबों के तुलनात्मक अध्ययन के युग में भी ऐसे आदमी पाए जा सकते हैं, जिनमें से कुछ पढ़े-लिखे भी हों, जो इस भयंकर सिद्धांत का समर्थन करते

हों कि एक भी ऐसा व्यक्ति हो सकता है, जो अछूत हो, अपने पास आने देने लायक़ न हो, या देखने योग्य न हो, यह मेरी कल्पना के परे की बात है। हिंदू-धर्म के एक तुच्छ विद्यार्थी की हैसियत से तथा हिंदू-धर्म के अनुशासनों का अक्षरशः पालन करनेवाले की हैसियत से मैं आपको यह बतला देना चाहता हूँ कि इस भीषण सिद्धांत के समर्थन में मुझे कहीं कोई बात नहीं मिलती। हमको यह विश्वास कर अपने को धोखा नहीं देना चाहिए कि संस्कृत में जो कुछ भी लिखा और छपा है, वही शास्त्र है, तथा उसका पालन करने के लिये हम बाध्य हैं। जो नैतिकता के मौलिक सिद्धांतों के विरुद्ध हो सकता है, जो तर्कशील बुद्धि के विपरीत है, उसे शास्त्र नहीं कहा जा सकता, चाहे वह कितनी ही पुरानी बात क्यों न हो। मेरे इस कथन की पुष्टि के लिये वेद, गीता तथा महाभारत से काफ़ी समर्थन मिलता है। इसीलिये, आशा है, ट्रावं-कोर की उन्नतिशील शासिका के लिये यह संभव होगा कि वह अपने शासन-काल में ही इस भूमि से इस अभिशाप को मिटाएगी। इससे बढ़कर उदार तथा महान् बात और क्या हो सकती है कि एक स्त्री कहे कि उसके शासन-काल में सदियों की दासता से उत्पीड़ित इन 'अछूतों' को पूरी स्वाधीनता दे दी गई।

किंतु मैं उनकी तथा उनके मंत्रिगणों की कठिनाइयों को भी जानता हूँ। चाहे कितनी ही निरंकुश सरकार क्यों न हो, ऐसा सुधार करने में डरती और सतर्क रहना चाहती है, किंतु बुद्धिमान् सर-कार ऐसे सुधारों के पक्ष में आंदोलन का स्वागत करेगी, पर मूढ़ सरकार ऐसे आंदोलनों के दबाने के लिये हिंसात्मक दमन का प्रयोग करेगी। किंतु वाइकोम सत्याग्रह के अपने निजी अनुभव से मैं यह कह सकता हूँ कि तुम्हारे यहाँ एक ऐसी सरकार है, जो ऐसे आंदोलन को सहन ही नहीं करेगी, किंतु उसका इसलिये

स्वागत करेगी कि ऐसा सुधार करने में उसी के हाथ मज़बूत हो जायँ। इसलिये वास्तविक कार्य तथा उसका श्रीगणेश ट्रावंकोर की जनता के हाथ में है, और वह भी 'अछूत' या अनुचित रूप से 'अवर्ण' कहलानेवाले हिंदू भाइयों के हाथ में नहीं। मेरे लिये तो 'अवर्ण' हिंदू का नाम ही ग़लत है, और हिंदू-धर्म के प्रति अपवाद है। अधिकांश दशाओं में इसका निदान या ओषधि, श्रीगणेश तथा प्रारंभ 'सवर्ण' कहलानेवाले हिंदुओं के हाथ में है, जिन्हें अछूत-प्रथा के पाप से अपने को मुक्त करना है। किंतु मैं तुमको यह बतला देना चाहता हूँ कि निष्क्रिय रूप से केवल यह विश्वास-मात्र ही पर्याप्त नहीं है कि अछूत-प्रथा एक पाप है—अपराध है। जो निष्क्रिय रूप से किसी अपराध को अपने सामने होते हुए देखता रहता है, क़ानूनन् वह उसमें क्रियाशील रूप से भाग लेनेवाला समझा जाता है। इसलिये आपको अपना आंदोलन हर प्रकार से जायज़ तथा वैध रूप से चलाना चाहिए। यदि मेरी आवाज़ उन तक पहुँच रही है, तो उन्हें चाहिए कि मेरे संदेश को उन ब्राह्मण-पुरोहितों के पास तक पहुँचा दें, जो इस आवश्यक तथा शीघ्र वांछनीय सुधार का विरोध कर रहे हैं। यह ऐतिहासिक सत्य होते हुए भी दुःखद सत्य है कि वहाँ धर्म-पुरोहित जिनको धर्म का रक्षक होना चाहिए था, उसके भक्षक तथा विनाशक बन रहे हैं। ट्रावंकोर तथा अन्य स्थानों में मैं अपनी आँखों के सामने उन्हीं ब्राह्मण-पुरोहितों को, जो धर्म की ध्वजा तथा रक्षक होते, अज्ञान या उससे भी बुरी वस्तु के कारण, धर्म का नाश करते देख रहा हूँ। जब वे अपने समूचे पांडित्य का उपयोग एक भयंकर अंध-विश्वास तथा भीषण भूल के समर्थन के लिये करते हैं, उनकी विद्या धूल में मिल जाती है, इसलिये मैं आशा करता हूँ कि समय रहते वे समय की गति पहचान लेंगे, तथा वर्तमान स्थिति के

साथ—जो इच्छया या अनिच्छया सत्य के मार्ग की ओर हमें लिए जा रही है—चलने की चेष्टा करेंगे। संसार के सभी धर्म, चाहे वे अन्य बातों में भिन्न हों, सर्व-सम्मत रूप से यह घोषित करते हैं—

"सत्यमेव जयते नानृतम्"

सुधारकों से

किंतु मैं सुधारकों को भी सावधान कर देना चाहता हूँ कि उनका मार्ग तंग और दुर्गम है, अतएव यदि वे धैर्य छोड़ देंगे, और न्याय-पथ से विचलित हो जायँगे, तो वे अपनी ही हानि करेंगे, और सुधार के मार्ग में बाधा पैदा कर देंगे। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि मैंने सुधारकों के हाथ में एक अमूल्य तथा अजेय अस्त्र सत्याग्रह के रूप में दे दिया है। यदि वह ईश्वर में विश्वास रखता है, उसे अपने में विश्वास है, अपने उद्देश्य की पवित्रता में विश्वास है, तो वह कभी हिंसात्मक न होगा। अपने अत्यंत भयंकर शत्रु के प्रति—उस पर अन्याय, अज्ञान, हिंसा का दोष लगाते हुए भी—हिंसक भाव न धारण करेगा। मैं विरोध का भय किए बिना ही कह सकता हूँ कि हिंसा द्वारा कभी सत्य का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है, इसलिये सत्याग्रही हिंसात्मक शक्ति द्वारा नहीं, प्रत्युत प्रेम और मत-परिवर्तन द्वारा अपने कथित शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। उसकी विधि सदैव उदार होगी तथा वह उदारचेता होगा। वह कभी अतिशयोक्ति का अतिक्रमण न करेगा। और, चूँकि अहिंसा का दूसरा नाम प्रेम है, उसका एकमात्र अस्त्र है आत्मपीड़ा। और, सर्वोपरि अछूत-प्रथा उठाने के आंदोलन में—जो मेरी सम्मति में मूलतः एक धार्मिक तथा आत्मशुद्धि का कार्य है—घृणा, जल्द-बाज़ी, अविचारशीलता तथा अतिक्रमण के लिये स्थान ही नहीं है। चूँकि प्रत्यक्ष कार्य में सबसे अमोघ अस्त्र सत्याग्रह है, इसलिये

सत्याग्रह की शरण लेने के पूर्व सत्याग्रही अन्य हरएक उपाय का प्रयोग कर लेता है। इसलिये वह निरंतर तथा प्रायः वैध अधिकारियों के पास जायगा, सर्वजन-सम्मति को अपनाने की चेष्टा करेगा, शांत तथा व्यवस्थित चित्त से जो सुनना चाहेगा, उसके सामने अपना विचार प्रकट करेगा, और जब इन सब विधियों को असफल पावेगा, वह सत्याग्रह करेगा। पर जब उसकी अंतरात्मा उसे सत्याग्रह के लिये प्रेरित करेगी, और वह उस पर उतारू हो जायगा, वह अपना सर्वस्व छोड़कर उस पर उतर पड़ेगा, और तब पीछे लौटना नहीं हो सकता। किंतु मुझे आशा करनी चाहिए कि इस प्रांत में जनता के लिये इतने प्रत्यक्ष अपराध को मिटाने के लिये सत्याग्रह की आत्मपीड़ाएँ न झेलनी पड़ेंगी।

हिंदू-धर्म का अभाव

[अछूतोद्धार की मार्मिकता क्या है ? इसका सत्याग्रह से क्या संबंध है ? साथ ही, कितने शांत रूप में हरिजन-सेवा-कार्य करना चाहिए, यदि यह समझना हो, तो ट्रवेंड्रम में आज से ६ वर्ष पूर्व महात्माजी ने जो व्याख्यान दिया था, जिसे हम प्रकाशित कर रहे हैं, पढ़ना अनिवार्य है।—संपादक]

ट्रावंकोर में एक बार आने के बाद मैं इस मोहक भूमि में पुनः-पुनः आने के अवसर की प्रतीक्षा करता रहता था। इसके अत्यंत रमणीक दृश्य, ट्रावंकोर में कन्याकुमारी की पर्वत-मालिका और ट्रावंकोर की स्त्रियों की सादगी तथा स्वाधीनता ने मेरे पहले आगमन के समय ही मेरा हृदय मोहित कर लिया था। किंतु इन भावों और अवस्थाओं के आनंद को यह सोचकर गहरा धक्का पहुँचता है कि इस अत्यंत प्राचीन हिंदू-राज्य में जिसे शिक्षा में प्रगति की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, अछूत-प्रथा अत्यंत भयंकर रूप में वर्तमान है। और, इस दशा में मुझे सदैव सबसे अधिक पीड़ा इसीलिये होती है कि मैं अपने को पक्का हिंदू समझता हूँ, और अपने हृदय को हिंदुत्व के भाव से ओत-प्रोत देखता हूँ। हम आज अछूत-प्रथा का जैसा पालन करते हैं, और उस पर जैसे विश्वास करते हैं, उसकी आज्ञा मैं ऐसे किसी भी ग्रंथ में नहीं पाता, जिसे हिंदू-शास्त्र कहते हैं। किंतु, जैसा मैंने अन्य स्थानों में बार-बार कहा है, यदि मुझे यह मालूम हो जाय कि हिंदू-धर्म में वास्तव में अछूत-प्रथा है, मुझे हिंदू-धर्म को ही छोड़ने में कोई हिचक न

होगी। क्योंकि मेरा विश्वास है, वह धर्म नहीं है, जिसमें नैतिकता और कर्तव्य-शास्त्र के मूल-सत्यों का समावेश न हो, तथा उसका कोई सिद्धांत इनके विपरीत हो। किंतु, मेरा दृढ़ विश्वास है कि अछूत-प्रथा हिंदू-धर्म का अंग नहीं है। मैं हिंदू बना ही हुआ हूँ, और दिन-प्रति दिन इस भयंकर पाप से छुटकारा पाने के लिये अधीर होता जा रहा हूँ। इसलिये जब मैंने यह देखा कि यह आंदोलन ट्रावंकोर में प्रबल होता जा रहा है, तो मैं विना किसी संकोच के इसमें कूद पड़ा। यदि मैंने इस प्रश्न को अपनाया है, तो इसलिये नहीं कि मैं किसी प्रकार इस रियासत को परेशान करूँ। क्योंकि, मेरा विश्वास है, श्रीमती महारानी अभिभाविका* अपनी प्रजा के कल्याण का पर्याप्त ध्यान रखती हैं। वह इन्हीं मार्गों पर सुधारक होने का भी दावा करती हैं। और, मैं सोचता हूँ कि मैं यह कहने में कोई गुप्त बात नहीं बतला रहा हूँ कि वह स्वयं निकटतम भविष्य में इस अन्याय को दूर करा देना चाहती हैं।

राज्य और प्रजा का कर्तव्य

किंतु कोई भी सरकार सुधार के मामले में अगुआ नहीं बन सकती। प्रकृतितः सरकार अपनी शासित प्रजा की प्रकटित इच्छाओं और भावों का अर्थ निकालनेवाली और उनको कार्य रूप में परिणत करनेवाली हुआ करती है। और, चाहे कितनी ही निरंकुश सरकार क्यों न हो, वह ऐसा सुधार नहीं करेगी, जो उसकी प्रजा हज़म न कर सके। किंतु इस एक बात का संतोष हो जाने पर मैं ग्राम-ग्राम में हरएक के सामने इस सुधार का संदेश ले जाने से नहीं रुकूँगा। सुनियमित, निरंतर आंदोलन ही स्वस्थ प्रगति की आत्मा होती है,

---

* यह व्याख्यान छः वर्ष पहले दिया गया था। उस समय महाराज गद्दी पर नहीं बैठे थे—महारानी, राजमाता, अभिभाविका थीं।

और मैं तब तक सरकार को चैन न लेने दूँगा, जब तक यह सुधार न चालू हो जाय। पर सरकार को चैन न लेने देने का यह अर्थ कदापि नहीं होता कि सरकार से छेड़खानी की जायगी। बुद्धिमान् सरकार ऐसे आंदोलन की सहायता, समर्थन तथा प्रोत्साहन का स्वागत करती है, जिससे स्वयं वह सुधार चालू कर सके, जिसे वह चाहती है। मुझे मालूम है, जब मैं पिछली मर्तबा यहाँ पर आया था, मुझसे कहा गया था कि यहाँ सवर्ण या छूत हिंदू एक प्रकार से उत्सुक हैं कि इस रूप में यह सुधार चालू कर दिया जाय। पर मुझे कहते संकोच होता है कि सवर्ण हिंदू अपनी इच्छा को दबाए सोते रहे। उन्होंने अपनी इच्छा को ठोस रूप नहीं दिया। मेरा विश्वास है कि राज्य के हरएक हिंदू का यह आवश्यक कर्तव्य है कि वह अपने इस कर्तव्य के प्रति सचेत हो जाय, और अपने आलसी भाइयों को भी उनके कर्तव्य का ध्यान दिलाकर उनकी तंद्रा दूर कर दे। मुझे ज़रा भी संदेह नहीं कि यदि सवर्ण हिंदू एक आवाज़ से अपनी कामना प्रकट कर दें, इस अछूत-प्रथा का भूत तुरत भाग जायगा। इसलिये हमें अपनी तंद्रा और आलस्य को सरकार के सिर मढ़ना अनुचित है।

पर हर समुदाय और देश में सुधारकों की संख्या इतनी थोड़ी है कि वे उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। और, मैं यह भी जानता हूँ कि इन सब सुधारों का भार उन्हीं थोड़े-से सच्चे सुधारकों के सिर पड़ता है। इसलिये इतने समय की पुरानी कुप्रथा के सम्मुख सुधारक क्या करें? यही प्रश्न हल करना है। संसार के सभी सुधारकों ने निम्न उपायों में से एक या दो उपाय ग्रहण किए हैं। उनकी बहुत बड़ी संख्या सुधारों के लिये तीव्र आंदोलन करती और हिंसा की शरण लेती थी। वे ऐसा आंदोलन करते थे, जिससे सरकार और जनता तंग आ जाता तथा जनता के—नागरिकों के—शांत

जीवन में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती थी। दूसरे प्रकार का सुधारक, जिसे मैं अहिंसात्मक श्रेणी का कहता हूँ, अधिक उदार रूप से आंदोलन करता है। वह मनसा वाचा कर्मणा हिंसात्मक कार्य द्वारा नहीं, अपितु आत्मपीड़ा द्वारा अपनी ओर ध्यान आकर्षित करता है। वह बाल बराबर भी सत्य से नहीं डिगता, और बुराई दूर करने के लिये अधीर होते हुए भी बुराई करनेवाले के प्रति भी बुरा भाव नहीं लाता। इसी के लिये मैंने एक छोटा-सा नाम रक्खा है, और दक्षिण-आफ्रिका के समान भारत के सामने भी मैं इसे 'सत्याग्रह' कहकर उपस्थित करता हूँ। कृपया सत्याग्रह और सिविल-नाफ़र्मानी को मिलाइए नहीं। दूसरी चीज़ सत्याग्रह की ही एक शाखा है, इसमें कोई संदेह नहीं, पर वह प्रारंभ में नहीं, एकदम अंत में आती है। उसके आरंभ के पूर्व ही अत्यधिक संयम का होना आवश्यक है। उसके लिये आत्मनियंत्रण अनिवार्य है। सत्याग्रह दानशीलता पर निर्भर करता है। सत्याग्रही अपने शत्रुओं के कार्यों और भावों का भी मनमाना या अनुचित अर्थ नहीं लगाता, क्योंकि वह दबाकर नहीं, मत-परिवर्तन कराकर उसे अपनी ओर मिलाना चाहता है। इसलिये आप इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि जब त्रिचनापल्ली में मेरे एक मित्र ने मुझसे भेंटकर मेरे समूचे सिद्धांतों का ग़लत अर्थ लगाया, तो मुझे कितना दुःखद आश्चर्य हुआ। उसने 'ट्रिवेंड्रम एक्सप्रेस' में मेरे साथ अपनी बातचीत की रिपोर्ट छपवाई थी, जिसे मैंने देखा है। मेरी उसके साथ जो बातचीत हुई थी, उसका शुरू से आख़ीर तक ग़लत और उलटा रूप दिया गया है (एक आवाज़—धिक्कार! धिक्कार!)। पर आपको 'धिक्कार' कहने का अधिकार नहीं है। जिन सज्जन ने 'धिक्कार' कहा है, वह दानशीलता या उदारता का गुण या अर्थ ही नहीं जानते, क्योंकि एक क्षण के लिये भी मेरा यह तात्पर्य नहीं है

कि जो सज्जन मुझसे मिले थे, उन्होंने जान-बूझकर अर्थ का अनर्थ किया है। आज प्रातःकाल उन्होंने मुझे जो सफ़ाई दी, मैं उसका विश्वास करने के लिये तैयार हूँ। किंतु मैंने आपका इसकी ओर इतना ध्यान इसीलिये आकर्षित किया है कि मैं आपको सत्याग्रह का अर्थ समझा सकूँ, और साथ ही जो लोग इस अस्त्र को चलाना नहीं जानते, उनके ऐसा करने में जो ख़तरे हैं, वे भी दिखला दूँ। मैं यह उदाहरण इसीलिये दे रहा हूँ कि भावी सुधारक को ऐसा पथ अपनाने का ख़तरा समझा दूँ, और सचेत कर दूँ कि जब तक उसे यह विश्वास न हो जाय कि जिस पथ पर वह खड़ा है, वह मज़बूत है या नहीं, जब तक उसे साधारण से अधिक आत्मनियंत्रण प्राप्त नहीं हो गया है, मेरे लिये सत्याग्रह बड़ा प्रिय और अमोघ अस्त्र होते हुए भी मैं यह नहीं चाहता कि अपने भरसक इसका दुरुपयोग या अनुचित उपयोग होने दूँ। इसीलिये मैंने इस मित्र को सलाह दी कि वह इस प्रश्न को तब तक न अपनावे, जब तक वह सत्याग्रह का पूरा मर्म समझकर उसका तथ्य न ग्रहण कर सके।

पर ऐसा कहकर मैं एक भी सुधारक का उत्साह ठंडा नहीं करना चाहता। इस समस्या का मैं इतने विस्तार के साथ इसलिये पर्यालोचन कर रहा हूँ कि मैं शीघ्रतम रूप से इसको हल करने के लिये, इनसे काम लेना चाहता हूँ। इसलिये मैं विनम्रता-पूर्वक यह सलाह देता हूँ कि आपमें से जिसको भी सार्वजनिक जीवन का कुछ अनुभव है, इस आंदोलन को अपने हाथ में लेकर, अपना बनाकर उन युवकों की दृढ़ता तथा क्रिया-शक्ति का सारथ्य करें, जो इसमें रुचि रखते हैं, पर कार्य करना नहीं जानते। और, मैं आपको यह भी सलाह देता हूँ कि आप अधिकारियों के संपर्क में भी आवें, और जब तक यह सुधार चालू न हो जाय, उनको चैन

न लेने दूँ। क्योंकि मैं स्वतंत्रता-पूर्वक आपसे यह कह सकता हूँ कि केवल महारानी ही नहीं, पर दीवान साहब भी इस सुधार के पक्षपाती हैं। पर चूँ कि वह दूसरे धर्म के हैं, हम और आप हिंदू यह जानते हैं कि वह किस सीमा तक जा सकते हैं। मेरी सम्मति में, जहाँ तक सरकार का संबंध है, वह सुधार के पक्ष में हैं, पर उसका श्रीगणेश आपकी ओर से होगा, उसका प्रोत्साहन आप करेंगे, न कि सरकार। आप मुझे इस बात के लिये क्षमा करेंगे कि मैंने बड़े विषय तथा तार्किक रूप में इस समस्या पर विचार किया है। मैं और करता ही क्या, क्योंकि मेरे पास इतना समय नहीं था कि मैं नेताओं को बुलाकर, उनके साथ इसके हरएक पहलू पर विचार करता। इसलिये मैं समझता हूँ कि अछूत-प्रथा के विरोध में इतनी बड़ी सभा के सम्मुख आप मेरे व्याख्यान की विषमता का ध्यान न करेंगे।

वर्णाश्रम-धर्म और अछूत-प्रथा

[हरिजन-उद्धार वर्णाश्रम-धर्म के प्रतिकूल नहीं है। यह विचार भ्रम-पूर्ण है। गांधीजी भी वर्णाश्रम के कट्टर समर्थक हैं। दोनो का क्या संबंध है, यह जानने के लिये गांधीजी के त्रिवेंद्रम के ही व्याख्यान का यह अंश पढ़ लेना आवश्यक है।—संपादक]

अछूत-प्रथा पर व्याख्यान देने के सिलसिले में आज एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ है, और मुझसे पूछा गया है कि अछूत-प्रथा का वर्णाश्रम-धर्म से क्या संबंध है। इसका अर्थ यह है कि मैं वर्णाश्रम-धर्म पर अपना विचार प्रकट करूँ। जहाँ तक मैं जानता हूँ, हिंदू-धर्म में सबसे सरल बात है 'वर्णाश्रम-धर्म' का अर्थ। 'वर्ण' का अर्थ अत्यंत सरल है। इसका केवल यही अर्थ है कि कर्तव्य के मूल-सिद्धांतों का विचार रखते हुए, जीविका-निर्वाह का कार्य वही होना चाहिए, जो कुल-परंपरा से हमारे पूर्वज करते आ रहे हैं। यदि हम सभी धर्मों में मनुष्य की जो परिभाषा की गई है, उसे मानने के लिये तैयार हैं, तो मैं इस बात को अपनी सत्ता-मात्र का मूल-नियम समझता हूँ। ईश्वर के बनाए सभी जानवरों में मनुष्य ही ऐसा पशु है, जिसकी सृष्टि इसलिये की गई है कि वह अपने विधाता को पहचाने। इसलिये मनुष्य का यह ध्येय नहीं है कि वह सदैव अपनी भौतिक श्री-वृद्धि करता जाय, किंतु उसका मुख्य और प्रधान कार्य है अपने विधाता या सृजनहार के निकट पहुँचने की चेष्टा करते रहना, और इसी परिभाषा के आधार पर हमारे प्राचीन ऋषियों ने हमारी सत्ता का यह नियम ढूँढ़ निकाला। आप समझ सकेंगे कि यदि हम सब

इस 'वर्ण-विधान' का अनुकरण करें, तो हमारी भौतिक महत्त्वाकांक्षा सीमित हो सकेगी। हमारी क्रिया-शक्ति को समय मिलेगा कि वह ईश्वर को जानने के लिये जिस विशाल तथा महत्पथ से चलना होता है, उसमें अपना उपयोग करेगा। इसलिये आप यह भी देख लेंगे कि संसार के जिन अधिकतम कार्यों की ओर हमारा ध्यान रहता है, वह निरर्थक प्रतीत होगा। इन बातों को सुनकर आप यह कह सकते हैं कि आज जिस 'वर्ण' का हम पालन करते हैं, वह मेरे वर्णित 'धर्म' के बिलकुल ही विपरीत है। यह बात सत्य है, पर जिस प्रकार असत्य को सत्य के रूप में माने जाते देखकर भी आप सत्य से घृणा नहीं करते, किंतु असत्य को सत्य से दूर कर सत्य को ही अपनाने की चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार 'वर्ण' के नाम पर प्रचलित अनुचित वस्तु को भी हम दूर कर सकते हैं, और हिंदू-समाज की वर्तमान कुदशा को परिष्कृत कर शुद्ध कर सकते हैं।

आश्रम तो वर्ण का परिणाम है। और, यदि 'वर्ण' ही ख़राब हो गया है, तो आश्रम का एकदम लोप हो जाना आश्चर्य-जनक नहीं है। मनुष्य के जीवन की चार श्रेणियों को आश्रम कहते हैं। यहाँ पर एकत्रित कॉलेज के विज्ञान तथा कला-विभाग के विद्यार्थियों ने मुझे थैलियाँ भेंट की हैं। यदि वे मुझे यह आश्वा-सन दिला सकें कि वे प्रथम आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का पूर्णतः पालन करते हैं, और मनसा वाचा कर्मणा वे ब्रह्मचारी हैं, तो मुझे आंतरिक हर्ष होगा। ब्रह्मचर्याश्रम का निर्देश है कि कम-से-कम २५ वर्ष की उम्र तक जो ब्रह्मचारी रहता है, उसे ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकार है। और, चूँकि हिंदू धर्म का संपूर्ण भाव ही यह है कि मनुष्य की वर्तमान दशा में सुधार करता हुआ उसे ईश्वर के निकट लेता जाय, इसीलिये ऋषियों ने गृहस्थाश्रम की भी एक सीमा बतला दी, और हमें वानप्रस्थ तथा

संन्यास आश्रमों को भी क्रमशः अपनाने का निर्देश किया। पर आज भारत के हर कोने को छान डालिए, इनमें से किसी भी आश्रम का सच्चा पालन करनेवाला एक भी न मिलेगा। आज की सभ्यता तथा नवीन बुद्धिमत्ता के युग में हम जीवन की इस योजना पर हँस सकते हैं। पर इसमें मुझे कोई संदेह नहीं कि हिंदू-धर्म की महान् सफलता का यही रहस्य भी है। हिंदू-सभ्यता अभी जीवित है, और मिस्री, असीरियन या बेबीलोनियन सभ्यता कभी की मर चुकीं। ईसाई-सभ्यता तो केवल दो हज़ार वर्ष पुरानी है। इस्लाम तो अभी कल की चीज़ है। ये दोनो ही महान् सभ्यताएँ हैं, पर मेरी तुच्छ राय में, अभी इनका निर्माण हो रहा है। ईसाई-योरप में बिलकुल ही ईसाइयत नहीं है, वह और मेरी समझ में इस्लाम भी अपनी महान् गूढ़ता की खोज में अँधेरे में मार्ग टटोल रहा है। और, आज इन दो महान् धर्मों में स्वास्थ्यकर तथा अत्यंत अस्वास्थ्यकर दोनो प्रकार की प्रतिस्पर्द्धाएँ हो रही हैं। ज्यों-ज्यों मैं बूढ़ा होता जाता हूँ, मेरी यह धारणा दृढ़ होती जाती है कि मानवी जीवन के लिये 'वर्ण' का होना आवश्यक है, और इसीलिये मैं ईसाई और मुसलमान तथा हिंदू की रक्षा के लिये समान रूप से आवश्यक समझता हूँ। इसलिये मैं यह मानना अस्वीकार करता हूँ कि 'वर्णाश्रम' हिंदू-धर्म का अभिशाप है। आज दक्षिण में ऐसा कहना कुछ हिंदुओं के लिये फ़ैशन की बात हो गई है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि हम आप आजकल के वर्णाश्रम के भयंकर रूप को सहन करें या उसके वर्तमान स्वरूप के प्रति उदार भाव रक्खें। 'वर्णाश्रम' या जाति-पाँति का कोई संबंध नहीं। यदि आप चाहें, तो यह मान सकते हैं कि हिंदू-प्रगति में इस वस्तु ने बड़ी बाधा पहुँचाई है। और, अछूत-प्रथा इसी वर्णाश्रम का मैल है। जिस प्रकार धान या गेहूँ के खेत में घास-पात को नहीं उगने दिया

जाता, उखाड़ फेंका जाता है, उसी प्रकार इस मैल को भी हटा देना चाहिए। 'वर्ण' के इस भाव में किसी की बड़ाई-छुटाई का कोई स्थान ही नहीं है। यदि मैं हिंदू-भाव को ठीक प्रकार से व्यक्त कर सकता हूँ, तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि सभी व्यक्तियों का, सभी प्राणियों का जीवन समान है, कोई बड़ा या छोटा नहीं है। इसलिये ब्राह्मण का यह कहना या सोचना कि वह अन्य वर्णवालों से बड़ा है, नितांत अनुचित है। प्राचीन समय के ब्राह्मण यह नहीं कहा करते थे। वे आदरणीय इसलिये नहीं थे कि वे बड़प्पन का दम भरते थे, पर इसलिये कि पुरस्कार की लेश-मात्र भी कामना किए बिना ही वे दूसरों की सेवा करने के अधिकार का दावा रखते थे। पर आजकल के पुरोहितों ने इन पूर्वजों की महत्ता तथा आदर को अपनाने का पाखंड-मात्र किया है। वे हिंदू-धर्म या ब्राह्मणत्व की रक्षा नहीं कर रहे हैं। ज्ञात या अज्ञात रूप से वे अपनी ही डाल काट रहे हैं, और जब ये आपसे यह कहते हैं कि शास्त्रों में अछूत-प्रथा का निर्देश है, मैं निस्संकोच यह कहने के लिये तैयार हूँ कि वे अपने कर्तव्य तथा धर्म की अवज्ञा कर रहे हैं और हिंदू-धर्म के भाव की ग़लत व्याख्या कर रहे हैं। इसलिये आज इस समाज के श्रोता हिंदुओं पर ही यह निर्भर करता है कि वे अपने लिये अत्यावश्यक कर्तव्य पहचानकर इस दिशा में क्रियाशील हों, और इस शाप से अपना छुटकारा करें। आप एक प्राचीन हिंदू-राज्य की प्रजा हैं। आपको इस सुधार में अगुआ बनने का गर्व होना चाहिए। जहाँ तक मैं आपके चारो ओर के वातावरण से पढ़ सकता हूँ, मुझे यही दिखाई पड़ता है कि यदि आप सच्चाई तथा मेहनत से कार्य करना चाहें, तो वास्तव में यही अनुकूल अवसर है।

सवर्णों से अनुरोध

[गांधीजी एक क्षण के लिये भी अछूत-प्रथा को सहन नहीं कर सकते। यह भ्रम है कि इस विषय में वह 'क्रमागत विकास' की प्रतीक्षा करने को तैयार हैं। क्विलन में उनके एक व्याख्यान से यह स्पष्ट प्रकट होता है।—संपादक]

जिस प्रकार ज़रा-सा संखिया समूचे दूध को विषैला बना देता है, उसी प्रकार अछूत-प्रथा हिंदू-धर्म को विषैला कर रही है। दूध के गुण और संखिया के विषैलेपन को जानते हुए हम दूध के पास संखिया का एक क़तरा भी नहीं आने देंगे। ठीक इसी प्रकार मैं हिंदू-धर्म और अछूत-प्रथा का संबंध मानता हूँ, और एक क्षण के लिये भी इस प्रथा को जारी रखना घातक समझता हूँ। एक हिंदू होने के नाते मैं इस विषय में धैर्यशीलता को, शनैः-शनैः प्रगति करने के भाव को, हानिकर समझता हूँ। इसीलिये मैं निस्संकोच यह सलाह देता हूँ कि ट्रावंकोर की रियासत एक क्षण में इस कलंक को मिटा दे। किसी दूषण को धैर्य-पूर्वक सहना उसके और अपने साथ खिलवाड़ करना है। पर यह मैं जानता हूँ कि किसी हिंदू रियासत के लिये भी इस प्रकार का सुधार करना तब तक संभव नहीं, जब तक राज्य की हिंदू प्रजा स्वयं इस विषय में आगे न बढ़े। इसलिये राज्य के प्रधान के स्थान पर ज़्यादातर मैं इस सभा में उपस्थित प्रत्येक सवर्ण हिंदू से ही निजी तौर पर अनुरोध करना चाहता हूँ। अछूत कहलानेवाले भाइयों के प्रति हम आप बहुत समय से अपने कर्तव्य की अवहेलना करते आ रहे हैं। इस प्रकार हम लोग वास्तव

में हिंदू-धर्म के झूठे प्रतिनिधि हैं। बिना लेश-मात्र संकोच के मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप इस कुप्रथा के किसी भी समर्थक की कोई बात सुनने से इनकार कर दें। इस युग में किसी एक व्यक्ति या समुदाय का कोई कार्य छिपा नहीं रह सकता। जब तक हम लोगों के हृदय में इस कुप्रथा का भाव वर्तमान रहेगा, हमारी परीक्षा का परिणाम हमारे प्रतिकूल सिद्ध होता रहेगा, और हमारी दुर्बलता प्रकट होती रहेगी। यह तो आपको स्मरण ही रखना चाहिए कि इस समय संसार के सभी धर्मों का रूप शीघ्रता-पूर्वक परिवर्तित हो रहा है। ऐसी दशा में अगर हम शुतुर्मुर्ग की तरह अपना चेहरा छिपाकर सामने आनेवाली मुसीबत को भुला देना चाहें, तो इससे कोई लाभ नहीं होगा। होनी होकर रहेगी। इस विषय में मुझे किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान हलचल के युग में या तो अछूत-प्रथा ही नष्ट हो जायगी, या हिंदू-धर्म ही नष्ट हो जायगा।

किंतु मैं इतना जानता हूँ कि हिंदू-धर्म नहीं मर रहा है, न मरनेवाला है, न इसकी कोई संभावना है, क्योंकि अछूत-प्रथा एक मुर्दे के रूप में ही इस समय दिखाई पड़ रही है। वास्तव में यह प्रथा अपनी अंतिम साँसें ले रही है, और मुर्दा हो जाने पर भी जी उठने की निरर्थक चेष्टा कर रही है।

वर्णाश्रम की दलील

[वर्णाश्रम-धर्म का पालन तथा अछूत-प्रथा का नशा--दोनो बातें एक साथ कैसे संभव हैं ! साथ ही वैज्ञानिकों का विचार है कि वर्णाश्रम-प्रथा अवैज्ञानिक है। ये गूढ़ शंकाएँ हैं, जिनका संतोष-जनक समाधान गांधीजी ही कर सकते हैं।—संपादक]

एक संवाददाता लिखते हैं—

हाल ही में मद्रास में आपने जो व्याख्यान दिया था, उसमें चतुर्वर्ण-विभाग में अपना विश्वास प्रकट किया था। किंतु क्या वर्ण-प्रथा का परंपरागत होना उचित है ? कुछ लोगों की राय में आप परंपरागत विभाग में, उत्तराधिकार और कौटुंबिक विभाग में विश्वास रखते हैं। कुछ कहते हैं कि बात इससे उलटी ही है। आपकी लेखनी से तो पहली बात ही ठीक जान पड़ती है। उदाहरणार्थ, आपके इस कथन का क्या अर्थ है कि "अछूतों को शूद्र समझना चाहिए, और उनको अब्राह्मणों के सभी अधिकार प्रदान करने चाहिए। ब्राह्मण-अब्राह्मण के इस स्वेच्छाचार-पूर्ण भेद से क्या लाभ ? क्या वे दोनो दो भिन्न जीव ही हैं। दो भिन्न जंतु हैं। यदि अछूत इसी जीवन में अब्राह्मण हो सकता है, तो ब्राह्मण भी क्यों नहीं हो सकता ! पुनः यदि अछूत इस जन्म में शूद्र हो सकता है, तो वैश्य क्षत्रिय और क्षत्रिय ब्राह्मण क्यों नहीं हो सकता। जो लोग कर्म-विधान में अविश्वास करते हैं, उन्हें आप यह विधान मानने के लिये विवश क्यों करते हैं ? क्या संसार में श्रीनारायण गुरु स्वामी से बढ़कर कोई पूर्ण ब्राह्मण होगा ? मैं बनिया गांधी से

बढ़कर कोई ब्राह्मण नहीं देखता। मैं ऐसे सैकड़ों अब्राह्मणों को जानता हूँ, जो अधिकांश 'जन्मना' ब्राह्मणों से अच्छे हैं।

"यदि आप जन्मना वर्ण के सिद्धांत के पक्के समर्थक न होते, तो द्विज-वर्ग में वर्तमान समान धर्म, समान रीति, समान नियम होने पर भी, उनमें अंतर्विवाह की आज्ञा क्यों न देते? मेरी समझ में इसी कारण आप इतनी तत्परता-पूर्वक निरामिष ब्राह्मण-अब्राह्मण में सहभोज का भी विरोध करते हैं।

"इसमें कोई संदेह नहीं कि 'परंपरा' जीवन का एक महान् नियम है, पर उसकी रहस्यमयी योजना के पालन के विषय में और भी महान् तथा रहस्यमय कारण हैं। एक तो जीव-विज्ञान के विकास के सिद्धांत में, उसकी भाषा में, 'विभिन्नता' पर निर्भर करता है। यह विभिन्नता ही विश्व का प्रधान सिद्धांत है, जिस पर उसकी संपूर्ण प्रगति निर्भर करती है। इसी वस्तु को, कोई अधिक उपयुक्त नाम न होने के कारण आप 'उन्नति-प्रगति' कहते हैं। इसलिये इस विभिन्नता के नियम का पालन हरएक समाज के हित में आवश्यक है, अपालन हानि कर होगा। भारत में वर्ण-प्रचार का इतिहास इसका पर्याप्त प्रमाण है। इससे यह प्रमाणित होता है कि इस प्रथा को उपयुक्त करने में, इस नियम के पालन में जो सबसे भद्दी भूल हो सकती है, वह अपने धर्म, अपनी विद्या, अपने आध्यात्मिक कार्यों के लिये एक परंपरागत पुरोहित तथा रक्षक-समुदाय का निर्माण है, जो सदैव केवल इसी एक कार्य का ज़िम्मेदार और सर्वेसर्वा होगा।

"बा० भगवानदास-ऐसे ठोस सनातनी ब्राह्मण ने भी, जिन्होंने इस विषय पर गवेषणा-पूर्ण विचार किया है, 'भारत के समाज के पुनर्निर्माण पर अपनी यह सम्मति प्रकट की है कि जन्मना वर्ण का सिद्धांत छोड़ देना चाहिए। पर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि

आप-ऐसे आदमी इसका ठोस पालन करने की सलाह देते हैं। चूँकि बहुत-से आदमी इस विषय में आपकी सम्मति स्पष्ट रूप से नहीं जानते, इसलिये मैं आशा करता हूँ कि आप अपने सम्मानित पत्र में इस पत्र को तथा अपना उत्तर प्रकाशित कर देंगे।"

मेरी समझ में मैंने 'वर्णाश्रम' के विरुद्ध संवाददाता की सभी दलीलों का समय-समय पर उत्तर दे दिया है। किंतु निस्संदेह पाठक भुलने होते हैं, या जो बात जिनके विषय में लिखी जाती है, वही उसे पढ़कर रह जाते हैं। उदाहरणार्थ, मैंने वर्णाश्रम तथा अछूत-प्रथा के भेद को कई बार बतलाया है। पहली प्रथा को मैं बुद्धिमत्ता-पूर्ण वैज्ञानिक वस्तु समझता हूँ, तथा दूसरी को घोर अवगुण और पूर्व-प्रथा का मैल। संभव है, अज्ञान-वश मैं जो भेद देखता हूँ, वह न हो, या जिसे वैज्ञानिक समझता हूँ, वह केवल भ्रम और अंध-विश्वास हो। किंतु मैं वर्णाश्रम का विभाग व्यवसाय के आधार पर निर्धारित मानता हूँ, और मेरी समझ में वह बड़ा उपयोगी विभाग है, पर आजकल जाति-संबंधी भाव मूल-भाव के बिलकुल ही विपरीत है। बड़ाई-छुटाई का तो मेरे सामने कोई सवाल ही नहीं उठता। यह केवल कर्तव्य का प्रश्न है। मैंने यह अवश्य कहा है कि वर्ण-विभाग जन्मना है, पर मैंने यह भी कहा है कि शूद्र के लिये भी यह संभव है कि वह वैश्य बन जाय। पर वैश्य का कर्तव्य-पालन करने के लिये उसे वैश्यत्व का पट्टा नहीं चाहिए। स्वामी नारायण गुरु संस्कृत के विख्यात पंडित हैं, पर उनको अपना पांडित्य प्रकट करने के लिये ब्राह्मण कहलाने से कोई लाभ नहीं होगा। जो इस जन्म में ब्राह्मण के कर्तव्य का पालन करता है, वह बड़ी सरलता-पूर्वक अगले जन्म में ब्राह्मण के घर पैदा होगा। पर इसी जन्म में एक वर्ण से दूसरे वर्ण में परिवर्तन से बड़ी गड़बड़ पैदा होगी। बड़ी धोखा-धड़ी चल निकलेगी। इसका प्राकृतिक परिणाम यह

होगा कि वर्ण का नामोंनिशान ही मिट जायगा। पर इस वस्तु को मिटाने का कोई कारण मेरी समझ में नहीं आता। भले ही इससे भौतिक महत्त्वाकांक्षा में बाधा पड़ती हो। किंतु धार्मिक उद्देश्य से रची व्यवस्था के साथ भौतिक उद्देश्य का सम्मिश्रण मैं नहीं कर सकता। मैं इसके लिये क्षमा चाहता हूँ।

मेरे संवाददाता का उदाहरण भी उचित नहीं। मैं पंचम को शूद्र इस वास्ते कहता हूँ कि मेरा विश्वास है कि भारत में कोई पंचम वर्ण था ही नहीं। पंचम का वही कार्य है, जो शूद्र का है, अतः उसे पंचम कहने की आवश्यकता ही क्या है! मेरा तो विश्वास है कि अछूत-प्रथा तथा 'वर्णाश्रम' के संबंध में इतना भ्रम तथा वर्णाश्रम का विरोध अछूतोद्धार का समर्थन—इन विपरीत बातों से अछूत-कुप्रथा के निवारण में बड़ी बाधा पहुँचती है।

यह तो स्पष्ट है कि वर्णाश्रम-विधान से 'जीव-भेद-विज्ञान' के विधान में कोई बाधा नहीं पड़ती। न तो इसकी कोई भी गुंजा-यश ही है। पर एक ढंग की चीज़ में कुछ वर्ष या पीढ़ियों में भेद नहीं पैदा हो जाता। ब्राह्मण या अछूत में कोई मूल-भेद नहीं है। पर जो चाहे, वह खोजकर देख ले कि दोनों में या चतुर्वर्ण में एक विशेष भेद द्रष्टव्य है। मैं चाहता हूँ कि मेरे संवाददाता महोदय मेरे साथ मिलकर ब्राह्मण या किसी के भी बड़प्पन के विचार का विरोध करते, उससे लोहा लेते। वर्णाश्रम में जो अवगुण आ गए हैं, उनको दूर करना चाहिए, न कि वर्णाश्रम को ही।

वर्णाश्रम और अछूत-प्रथा

[पिछले उत्तर से भी लोगों की शंका का पूरा निवारण नहीं होता। कुछ शंकाएँ रह जाती हैं। पर यह लेख उनका पूरा समाधान कर देता है।—संपादक]

एक संवाददाता लिखते हैं—

"वर्णाश्रम-संबंधी मेरे पत्र के उत्तर में आपने जो आलोचना की है, उसके संबंध में मुझे यही लिखना है कि मैं वर्णाश्रम और अछूत-प्रथा में भेद को भले प्रकार समझता और मानता हूँ, और यह भी स्वीकार करता हूँ कि पिछली वस्तु की हिंदू-शास्त्र में कहीं भी आज्ञा नहीं है, किंतु जैसा आप स्वयं कहते हैं, 'कार्य-विभाग जन्मना होना चाहिए—' ऐसी दशा में हमारे समाज में अछूत-समुदाय सदा के लिये बना रहेगा। क्या यह स्वाभाविक नहीं है कि जिनका यह कौटुंबिक तथा पुश्तैनी पेशा समझा जाता है, जो झाड़ू लगाएँ, मुर्दा ढोएँ, या क़ब्र खोदें, उनको हम बहुत गंदा समझकर हिकारत की नज़र से देखें। हम उनको छूने से भी घृणा करें! अन्य किसी भी देश में ऐसा व्यक्ति इसलिये अछूत नहीं समझा जाता कि वहाँ इस प्रकार के कार्य पुश्तैनी नहीं समझे जाते, और समाज का कोई भी व्यक्ति योग्यता प्राप्त कर सिपाही, अध्यापक, व्यापारी, वकील, पादरी या राजनीतिज्ञ हो सकता है। इसलिये, मेरी समझ में, इस कुप्रथा की जड़ इसीलिये जमी है कि हम लोग ऐसी कुप्रथाओं को पुश्तैनी समझते हैं। और, मुझे यह भी प्रतीत होता है कि जब तक हम लोग इस पुश्तैनी क़ानून

को मानेंगे, हमारा इस कुप्रथा से कभी छुटकारा नहीं हो सकता। यह संभव है कि रामानुज-ऐसे महान् सुधारकों के प्रभाव के कारण उसकी जड़ता में कुछ कमी आ जाय, पर इस दुर्गुण को एकदम दूर करना असंभव ही है। मेरी समझ में जाति-पाँति का बंधन बिना तोड़े अछूत-प्रथा का अंत करने की चेष्टा वैसे ही निरर्थक है, जैसे पेड़ का सिरा काटकर उसको निर्मूल करने का विचार।"

यह पत्र बहुत विचार-पूर्ण है, और यदि सुधारक सतर्क न रहेंगे, तो संवाददाता का भय कटु वास्तविकता में परिणत हो सकता है। पर इस तर्क में एक स्पष्ट विभ्रम भी है। क्या भंगी या मोची जन्मना या कार्य के कारण अछूत समझा जाता है? यदि जन्मना अछूत समझा जाता है, तो यह बड़ी भयंकर प्रथा है, और इसका अंत करना ही चाहिए। यदि कार्य द्वारा व्यक्ति अछूत होता है, तो सफ़ाई के विचार से यह बड़ी महत्त्व की बात है। कोयले की खदान में काम करनेवाला आदमी जब तक काम करता है, अछूत बना रहता है, और आप उससे हाथ मिलाना भी चाहेंगे, तो वह यह कहकर अस्वीकार कर देगा कि "मैं बहुत गंदा हो रहा हूँ।" पर काम समाप्त कर, स्नान कर, वस्त्र बदलकर वह सबके साथ, ऊँचे-से-ऊँचे लोगों के साथ मिलता है। इसीलिये ज्यों ही हम 'जन्मना' के भाव को अर्थात् बड़प्पन-छुटपन के भाव को दूर कर देते हैं, हम 'वर्णाश्रम' को शुद्ध कर उसे निर्मल बना देते हैं। ऐसी दशा में भंगी की संतान भी हेय नहीं समझी जायगी, और उसका ब्राह्मण के समान आदर होगा। अत-एव दोष पुश्तैनी क़ानून का, बाप-दादों के कार्यों को अपनाने का नहीं, पर असमानता के अनुचित भाव का है।

मेरी समझ में वर्णाश्रम की रचना किसी संकुचित भाव से नहीं हुई थी। इसके विपरीत इसमें तो मज़दूरी करनेवाले शूद्र को वही

स्थान दिया गया, जो विद्वान् ब्राह्मण को। इसका ध्येय था गुण का विस्तार, दुर्गुण का नाश तथा मानवी सांसारिक महत्त्वाकांक्षा को स्थायी आध्यात्मिक महत्त्वाकांक्षा में परिणत करना। ब्राह्मण और शूद्र का—दोनो का ही लक्ष्य था संसार की झूठी माया-ममता से मुँह मोड़कर मोक्ष प्राप्त करना। समय पाकर यह प्रथा कुप्रथा केवल निम्न-रीति-रिवाजों में फँस गई, और इसका कार्य किसी को ऊँच, किसी को नीच बनाना रह गया। यह बात स्वीकार कर मैं इस वस्तु की दुर्बलता नहीं बतला रहा हूँ, पर यह तो मानव-स्वभाव की ही दुर्बलता है, जिसमें कभी उच्च 'स्व' प्रधान हो जाता है, कभी हेय 'स्व'। वर्तमान सुधारक का कार्य अछूतपन के शाप को दूर कर वर्णाश्रम को उसके पूर्व में स्थापित करना है। इस सुधार के बाद परिष्कृत वर्णाश्रम अधिक दिन चलेगा या नहीं, यह परीक्षा की बात है। यह बात उस नए ब्राह्मण-वर्ग के हाथ में है, जिसकी नई रचना हो रही है, जो मनसा वाचा कर्मणा देश-सेवा तथा धर्म-सेवा में जुट रहा है। यदि वे निष्काम तथा दैवी भाव से प्रेरित होकर कार्य करेंगे, तो हिंदू-धर्म का कल्याण होगा, अन्यथा अकल्याण होगा, और अनुचित हाथों में पड़कर, संसार के अनेक धर्मों के समान, हिंदू-धर्म का भी नाश हो जायगा। किंतु मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिंदू-धर्म इतना शक्तिशाली है कि समय-समय पर उसमें जो अपवित्रताएँ समाविष्ट हो जाती हैं, उन्हें दूर कर दे। मेरी समझ में उसकी यह क्षमता अभी तक वर्तमान है।

बंगाल के अछूत

[अछूतों में भी अछूत होते हैं। यह एक विषम समस्या है कि इनका सुधार कैसे हो! गांधीजी के पास इसकी अचूक औषध है।—संपादक]

एक बंगाली संवाददाता पूछते हैं—

१—"बंगाल में अछूत कुएँ से पानी नहीं खींचने पाते, न तो वे उस कमरे में जाने पाते हैं, जिसमें पीने का पानी रक्खा रहता है। इस दुर्गुण को दूर करने का क्या उपाय है? यदि हम उनके लिये अलग कुएँ खुदवाएँ या अलग स्कूल खोलें, तो इस दुर्गुण को स्वीकार ही कर लेना होगा।

२—"बंगाल के अछूतों की मनोवृत्ति में एक विचित्रता यह है कि वे यह तो चाहते हैं कि ऊँचे वर्णवाले उनके हाथ का छुआ पानी पिएँ, पर वे स्वयं अपने से नीचे वर्ण या समुदायवालों का छुआ पानी नहीं पीते। उनकी इस भूल का सुधार कैसे कराया जाय।

३—"बंगाल की हिंदू-महासभा तथा साधारण बंगाली हिंदू जनता लोगों से कहती फिरती है कि आप (गांधीजी) अछूतों के हाथ का छुआ पानी उचित नहीं समझते।"

मेरा उत्तर है

१—इस दुर्गुण को दूर करने का एक उपाय यह है कि हम उनके हाथ से पानी पीना शुरू करें। मेरी समझ में उनके लिये अलग कुआँ खोदने से यह बुराई स्थायी नहीं हो जायगी। अछूत-

प्रथा के प्रभाव को मिटाने में काफ़ी समय लगेगा। इस भय से कि दूसरे उनको अपने कुएँ पर चढ़ने न देंगे, उनके लिये अलग कुएँ बनाकर उनकी सहायता न करना अनुचित होगा। मेरा तो विश्वास है कि अगर हम अछूतों के लिये अच्छे कुएँ बनवाएँगे, तो बहुत-से लोग उनका प्रयोग करेंगे। अछूतों में तभी सुधार होगा, जब सवर्णों का उनके प्रति भाव बदलेगा, तथा सवर्ण उनके प्रति अपना कर्तव्य पहचान जायँगे।

२—जब 'उच्च वर्ण' कहलानेवाले हिंदू अछूतों को छूना शुरू कर देंगे तो अछूतों में अछूत-प्रथा का भी स्वाभाविक अंत हो जायगा। हमारा कार्य अछूतों में सबसे नीची श्रेणी से प्रारंभ होना चाहिए।

३—मैं नहीं जानता कि बंगाल की हिंदू-महासभा मेरे विषय में क्या कहती है! मेरी स्थिति स्पष्ट है। मैं अछूतों को शूद्रों का अंग समझता हूँ। चूँकि हम शूद्रों के हाथ का छुआ पानी पीते हैं, अछूतों के हाथ का पानी पीने में कोई एतराज़ नहीं होना चाहिए।

कठिन समस्या

[ब्राह्मण तथा अछूत की समस्या आंध्र तथा सुदूर दक्षिण में बड़ी विषम है। इसका शीघ्र निपटारा नहीं दिखाई पड़ता। लाचार होकर अब्राह्मणवर्ग उत्तेजित होता जा रहा है। पर गांधीजी ब्राह्मणत्व का प्रतिपादन, ब्राह्मण-समुदाय की रक्षा तथा ब्राह्मणों की महत्ता का संस्थापन भी चाहते हैं, और इसकी अच्छी विधि भी उनके पास है।—संपादक]

आंध्र से एक मित्र अपनी कठिनाइयों को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—

"...बंगाल के एक महाशय के पत्र के उत्तर में आपने लिखा है कि चूँकि हम शूद्रों के हाथ का पानी पीते हैं, इसलिये हमें अछूतों के हाथ का पानी पीने में कोई एतराज़ नहीं होना चाहिए। 'हम' से आपका तात्पर्य 'सवर्ण हिंदुओं' से है। किंतु क्या आपको यह मालूम है कि आंध्र तथा भारत के सुदूर दक्षिण-भाग में ब्राह्मण अब्राह्मणों (तीन में से किसी भी जाति के लोगों) के हाथ का पानी ही नहीं पीते, प्रत्युत घोर सनातनी अब्राह्मणों को छूते तक नहीं।

"आपने प्रायः कहा है कि उच्च वर्णों का बड़प्पन का झूठा भाव मिटाने के लिये अंतर्भोज-सहभोज अनिवार्य नहीं है। आपने इसी संबंध में एक बार महामना मालवीयजी का उदाहरण देकर बतलाया था कि यद्यपि आप लोग एक दूसरे का पर्याप्त आदर करते हैं, फिर भी यदि मालवीयजी आपके हाथ का छुआ पानी तक नहीं पीते, तो इससे आपके प्रति कोई उपेक्षा नहीं

प्रकट होती। उपेक्षा तो नहीं प्रकट होती, यह मैं स्वीकार कर सकता हूँ। किंतु क्या आपको यह मालूम है कि हमारी तरफ़ के ब्राह्मण का भोजन यदि सौ गज़ की दूरी से भी अब्राह्मण देख ले, तो वह भोजन त्याग देगा। छूने की बात तो दूर रही। मैं आपको यह भी बतला दूँ कि यदि सड़क पर कोई अब्राह्मण या शूद्र किसी ब्राह्मण के भोजन के समय बोल दे, तो क्रुद्ध होकर वह भोजन छोड़ देगा। उस दिन वह भोजन ही नहीं करेगा। यदि इस दशा को घोर उपेक्षा न कहा जाय, तो इसका क्या अर्थ लगाया जा सकता है। क्या ब्राह्मणों ने अपने को अत्यधिक उच्च नहीं समझ लिया है? क्या आप कृपा कर इस विषय में अपना विचार प्रकट करेंगे! मैं स्वयं एक ब्राह्मण युवक हूँ, इसलिये मुझे इन बातों का निजी तौर पर ज्ञान है।"

अछूत-प्रथा शत-मुखवाला पिशाच है। यह एक घोर नैतिक तथा धार्मिक प्रश्न है। और लिये अंतर्भोज सामाजिक प्रश्न है। इस अछूत-प्रथा के भीतर अवश्य दूसरों के लिये एक घृणा भाव छिपा हुआ है। समाज की जीवनी शक्ति में घुन की तरह लगकर यह सत्या-नाश कर रही है। यह प्रथा मनुष्य के अधिकार को ही अस्वीकार करती है। इसका तथा अंतर्भोज-सहभोज का कोई संबंध नहीं है। और मैं समाज-सुधारकों से आग्रह करूँगा कि वे इन दोनो चीज़ों को मिलाने की गड़बड़ न करें। यदि वे ऐसा करेंगे, तो 'अछूत तथा अस्पर्श्य लोगों' के उद्धार के पवित्र कार्य को धक्का पहुँचाएँगे। ब्राह्मण संवाददाता की कठिनाई वास्तविक है। इससे पता चलता है कि किस हद दर्जे तक यह बुराई पहुँच सकती है। प्राचीन युग के समान ब्राह्मण शब्द विनम्रता, शालीनता, पांडित्य, विद्या, त्याग, पवित्रता, साहस, क्षमाशीलता तथा सत्य-ज्ञान के लिये पर्यायवाची होना चाहिए था। पर आज यह पवित्र भूमि ब्राह्मण-अब्राह्मण के

भेद से विनष्ट हो रही है। अनेक दशाओं में ब्राह्मण का वह बड़प्पन चला गया है, जो उसकी सेवा के कारण जन्म-सिद्ध अधिकार हो गया था, पर जिसका वह कभी दावा नहीं करता था। आज जिस वस्तु का उसे अधिकार नहीं रह गया है, उसी पर वह हताश होकर अपना स्वत्व प्रकट कर रहा है, और इसी-लिये दक्षिण-भारत के कुछ भागों में अब्राह्मण उनसे ईर्ष्या करने लगे हैं। पर हिंदू-धर्म तथा देश के सौभाग्य से इस संवाददाता-ऐसे भी ब्राह्मण मौजूद हैं, जो दृढ़ता-पूर्वक इस अनुचित स्वत्व का निरादर कर रहे हैं, इसकी माँग का विरोध कर रहे हैं, और अपनी परंपरागत महत्ता के अनुसार अब्राह्मणों की निस्स्वार्थ सेवा कर रहे हैं। हर जगह ब्राह्मण ही आगे बढ़कर अछूत-प्रथा का विरोध कर रहे हैं।

आंध्र-संवाददाता ने जिस प्रकार के ब्राह्मणों का उल्लेख किया है, उनसे मैं आग्रह-पूर्वक अनुरोध करूँगा कि समय की गति पहचानें, और बड़प्पन के झूठे भाव त्याग दें, तथा अब्राह्मण को देखने-मात्र से जो पाप लगने का अंध-विश्वास उन्हें हो गया है, या उसके वचन-मात्र से उन्हें भोजन ख़राब हो जाने का जो भ्रम हो जाता है, उसका त्याग कर दें। ब्राह्मणों ने ही संसार को यह उपदेश दिया था कि वे हरएक वस्तु को ब्रह्ममय देखें। ऐसी दशा में कोई बाहरी वस्तु उन्हें अपवित्र नहीं कर सकती। अपवित्रता तो भीतरी वस्तु है। ब्राह्मणों को चाहिए कि वे पुनः यह संदेश दें कि हमारे मन के दुर्भाव ही वास्तविक अछूत तथा अदर्शनीय हैं। उन्हीं ने संसार को यह सिखलाया था—

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।"

आंध्र-संवाददाता ने जो कुछ कहा है, उससे अब्राह्मणों को उत्तेजित नहीं हो जाना चाहिए। उसकी ओर से देशभक्त ब्राह्मण

ही इस संवाददाता के समान लड़ाई लड़ लेंगे। आजकल अब्राह्मणों में कुछ ब्राह्मणों के कुचाल के कारण ब्राह्मणों के प्रति जो दुर्भाव उत्पन्न हो गया है, वह अनुचित है। उनमें इतनी शालीनता होनी चाहिए कि जो लोग स्वयं अपने प्रति दुराचरण कर रहे हैं, उनसे सदाचरण की आशा करें। यदि मेरी बग़ल से निकल जानेवाला अपने को अपवित्र समझता है, या वह समझता है कि वह मेरी वायु के स्पर्श से दूषित हो गया है, तो मुझे अपमानित नहीं होना चाहिए। हमारे लिये इतना ही पर्याप्त है कि उसके कहने से रास्ता न छोड़ दें या इस डर से कि मेरी वाणी उसे दूषित कर देगी, बोलना न बंद कर दें। जिस प्रकार अपने प्रति उपेक्षा भाव मुझे पसंद नहीं है, उसी प्रकार उसके प्रति भी उपेक्षा-भाव दिखलाना मेरे लिये अनुचित है। हाँ, उसके अंध-विश्वास तथा अज्ञान के प्रति हमारे हृदय में दया-भाव होना उचित है। यदि अब्राह्मण में लेश-मात्र भी असंयमशीलता रह जायगी, तो उसका उद्देश्य सफल न होगा—उसका काम पूरा न होगा। किसी भी दशा में उसे सीमा से आगे बढ़कर ब्राह्मण को परेशान नहीं करना चाहिए। हिंदू-धर्म तथा मनुष्यता का सबसे सुंदर फूल ब्राह्मण है। मैं ऐसी कोई बात नहीं होने देना चाहता, जिससे वह मुर्झा जाय। यह मैं जानता हूँ कि वह अपनी रक्षा कर सकता है। इसके पहले वह बहुत-से तूफ़ानों का सामना और अपनी रक्षा कर चुका है। अब्राह्मणों के सिर यह कलंक नहीं होना चाहिए कि उन्होंने फूल की सुगंधि तथा ज्योति छीनने की चेष्टा की। ब्राह्मणों का नाश कर अब्राह्मणों का उदय मुझे अभीष्ट नहीं है। मैं चाहता हूँ कि वे उस उच्च पद को प्राप्त करें, जिसे ब्राह्मण पहले प्राप्त कर चुके थे। ब्राह्मण जन्मना होते हैं, ब्राह्मणत्व नहीं। हममें से निम्न-से-निम्न भी इस गुण का प्रतिपादन कर सकता है।

उचित प्रश्न

[मद्रास से एक व्यक्ति ने गांधीजी के पास, हरिजनों के संबंध में, उनकी समस्या के संबंध में, बड़े बुद्धिमत्ता-पूर्ण प्रश्न भेजे थे। गांधीजी का उत्तर भी बड़ा मार्मिक तथा पठनीय है। इस प्रश्नोत्तर से संपूर्ण प्रथा का—आदि से अंत तक—समीक्षण हो जाता है। प्रश्न कोई नए नहीं हैं। गांधीजी उनका बार-बार उत्तर दे चुके हैं। पर पूछने का ढंग नया—उत्तर का ढंग भी नया है।—संपादक]

कुछ समय पूर्व अछूत-प्रथा के संबंध में बंगाल से प्राप्त एक विचार-पूर्ण पत्र मैंने प्रकाशित किया था। इस दिशा में लेखक अभी तक परिश्रम-पूर्वक अनुसंधान कर रहा है। इस समय मेरे पास मद्रास से एक प्रश्नावली भेजी गई है, जिससे लेखक की अनुसंधान-वृत्ति का पता चलता है। यह बड़ा शुभ लक्षण है कि सनातनी हिंदू इस कंटकाकीर्ण प्रश्न पर गवेषणा कर रहे हैं। उनके हृदय में जिज्ञासा तो उत्पन्न हो गई है। प्रश्नकर्ता की उत्कंठा में तो कोई संदेह हो ही नहीं सकता। किंतु ये प्रश्न उसी ढंग के हैं, जैसा कि अपनी यात्रा के सिलसिले में मुझसे बार-बार पूछा गया है। इस-लिये इस आशा से कि मेरे उत्तरों से प्रश्नकर्ता का पथ प्रशस्त हो जाय, और उसकी तथा उसके समान कार्यकर्ताओं और सत्य मार्ग के अवलंबियों की जिज्ञासा शांत हो जाय, मैं संवाददाता द्वारा उपस्थित समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा करता हूँ—

(१) अछूत-प्रथा को मिटाने के लिये क्या व्यावहारिक कार्य करना चाहिए ?

अ—ऐसे सभी स्कूल, सार्वजनिक पाठशालाएँ, मंदिर, सड़क, कुएँ आदि का मार्ग अछूतों के लिये खोल देना, जहाँ अब्राह्मण का जाना निषिद्ध न हो, और जो किसी एक खास समुदाय या जाति के लिये ही न निर्मित हों।

ब—सवर्ण हिंदुओं को चाहिए कि अछूतों की संतानों के लिये स्कूल खुलवाएँ, कुएँ खुदवाएँ, और उनकी हर प्रकार से आवश्यक निजी सेवा करें। उदाहरणार्थ मादक द्रव्य-निषेध तथा स्वास्थ्य-सुधार, सफ़ाई आदि का कार्य करना और उनकी औषधि आदि से सहायता करना।

(१) जिस समय अछूत-बाधा एकदम उठ जायगी, अछूतों का धार्मिक पद-महत्त्व क्या रहेगा ?

धार्मिक महत्त्व वही होगा, जो अन्य सवर्ण हिंदुओं का है। इसलिये उन्हें अति शूद्र न कहकर शूद्र कहा जायगा।

(२) अछूत-प्रथा के मिट जाने पर अछूतों तथा उच्च वर्ण के सनातनी हिंदुओं का क्या संबंध रहेगा ?

जैसा अब्राह्मण हिंदुओं के साथ !

(४) क्या आप सभी जातियों का सम्मिश्रण चाहते हैं ? मैं सभी जातियों को मिटाकर केवल चार भेद ही रहने दूँगा।

(५) अछूत अपनी उपासना के लिये स्वयं मंदिर क्यों नहीं बनाते ? वर्तमान मंदिरों में पैर अड़ाने से क्या लाभ ?

उच्च वर्णवालों ने उनको इस योग्य नहीं छोड़ा है कि वे ऐसा कर सकें। यह सोचना कि वे हमारे मंदिरों में दस्तंदाज़ी करेंगे, इस प्रश्न को ग़लत ढंग से सोचना है। हम सवर्णों को मंदिरों में उन्हें भी प्रवेशाधिकार देकर सबके लिये मंदिरों का द्वार खोल देना चाहिए।

(६) क्या आप सांप्रदायिक मताधिकार के समर्थक हैं ? क्या

आपके मत में शासन के सभी विभागों में अछूतों का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिए ?

ऐसी बात नहीं है। किंतु यदि अछूतों के लिये जान-बूझकर मार्ग बंद कर दिया जाता है, और प्रभावशाली समुदाय उन्हें प्रवेश नहीं देता, तो इस अनुचित कार्य से स्वराज्य का मार्ग ही बंद हो जायगा। सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व मैं नहीं पसंद करता, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं यह चाहता हूँ कि मैं किसी संप्रदाय-समुदाय को प्रतिनिधित्व से वंचित रक्खूँ। इसके विपरीत मेरी समझ में प्रतिनिधित्व-प्राप्त वर्गों का यह कर्तव्य है कि वे अप्रतिनिधित्व-प्राप्त समुदायों को उनके समुचित प्रतिनिधित्व का अवसर दें।

(७) क्या आप वर्णाश्रम-धर्म की परिपक्वता—क्षमता में विश्वास रखते हैं ?

हाँ। किंतु आज वर्णों की खींचातानी हो रही है। आश्रम का पता नहीं है। धर्म का अर्थ ग़लत लगाया जा रहा है। हमें अपनी संपूर्ण प्रणाली को दुहराकर उसे धर्म-संबंधी नवीनतम शोध की श्रेणी में लाना पड़ेगा।

(८) क्या आपको इस बात में विश्वास नहीं है कि भारत कर्म-भूमि है ? इस संसार में जिसका जिस दशा में जन्म होता है, वह उसके पूर्व-जन्म के संस्कार तथा कर्म के अनुसार ही होता है ?

किंतु मैं इस बात में उस दृष्टि से विश्वास नहीं करता, जिस दृष्टि से संवाददाता पूछ रहा है। जो जैसा बोएगा, वैसा काटेगा। किंतु भारत प्रधानतः कर्म-भूमि है, भोग-भूमि नहीं।

(९) क्या अछूतों की शिक्षा तथा समाज-सुधार हो जाने के बाद तब अछूतोद्धार होना उचित नहीं है ? क्या ये बातें पहले नहीं ज़रूरी हैं ?

किंतु बिना छुआछूत मिटाए उनमें शिक्षा और सुधार हो ही नहीं सकता।

(१०) क्या यह उचित तथा स्वाभाविक नहीं है कि मांसाहारी निरामिष से तथा निरामिष मांसाहारी से और अमदिरा-सेवी मदिरा-सेवी से दूर तथा पृथक् रहने की चेष्टा करे ?

यह कोई आवश्यक बात नहीं है। मदिरा-निषेध का समर्थक अपना यह कर्तव्य समझेगा कि मदिरा-सेवी के बीच में रहकर उसके दुर्गुण को दूर कराए। यही बात निरामिष के लिये भी कही जा सकती है।

(११) क्या यह सत्य नहीं है कि एक शुद्ध व्यक्ति (शुद्ध इस विचार से कि वह निरामिष-भोजी तथा मादक द्रव्य का सेवन करने-वाला नहीं है) किसी मदिरा-सेवी तथा मांसाहारी का साथ करने से अशुद्ध (मांसाहार तथा मदिरा-सेवन के कारण) हो जाता है ?

जो आदमी अज्ञान-वश मांस-मदिरा का सेवन करता है, वह अपवित्र नहीं कहा जा सकता, पर दुराचारी के साथ मेल-जोल से सदाचारी भी दुराचारी हो सकता है, यह मैं मान सकता हूँ। किंतु मेरे कार्य-क्रम में किसी को अछूतों के साथ 'मिलने' या 'सहचार' कराने की बात नहीं है।

(१२) क्या यह सत्य नहीं है कि उपरि-लिखित कारण से घोर सनातनी ब्राह्मण अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिये केवल अछूतों से ही नहीं, प्रत्युत अन्य जातियों से भी पृथक् रहकर, अपना एक अलग समुदाय बनाकर ही रहते हैं ?

मेरी समझ में ऐसी आध्यात्मिकता का कोई महत्त्व नहीं है, जिसकी रक्षा के लिये उसे ताले में बंद कर रखना पड़े। इसके अलावा वह दिन चले गए, जब लोग स्थायी एकांतवास द्वारा अपने गुणों की रक्षा किया करते थे।

(१३) यदि आप अछूत-प्रथा को मिटाने की सलाह देते हैं, तो क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि अच्छा या बुरा, जैसा भी हो, आप भारत के वर्णाश्रम-धर्म को ही अव्यवस्थित करना चाहते हैं ?

एक सुधार का प्रतिपादन कर मैं किसी धर्म या व्यक्ति के कार्य में किस प्रकार हस्तक्षेप करता हूँ, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। हस्तक्षेप तो तब होता, जब मैं अछूतों को यह सलाह देता कि छूतों से ज़बरदस्ती स्पृश्यास्पृश्य का भाव उठवा दो।

(१४) घोर सनातनी ब्राह्मणों के प्रति क्या यह हिंसा नहीं है कि आप बिना उन्हें इस बात का तथ्य समझाए और उनके हृदय में विश्वास जमाए उनके धर्म में हस्तक्षेप करते हैं ?

हिंसा का दोषी तो मैं हो ही नहीं सकता, क्योंकि बिना उनके हृदय में विश्वास जमाए मैं धर्म में हस्तक्षेप करना ही नहीं चाहता।

(१५) अछूतों की बात तो जाने दीजिए। पर क्या ब्राह्मण अपने ही समाज के पृथक् वर्गों के हाथ का भोजन न कर, शादी-ब्याह न कर 'अछूतपन' के दोषी नहीं हैं ? वे तो दूसरों को छूते भी नहीं ?

यदि ब्राह्मण दूसरी जातिवालों को नहीं छूते, तो वे अछूतपन के पाप के भागी हैं।

(१६) ब्राह्मण राजनीति से अधिक धर्म की चिंता तथा परवा करता है। ऐसी दशा में यदि अहिंसात्मक असहयोग का मर्म पूरी तरह समझनेवाला अछूत सत्याग्रह करता है, तो क्या वह सत्याग्रह हत्याग्रह में नहीं परिणत हो सकता ?

यदि संवाददाता का तात्पर्य वाइकोम-सत्याग्रह से है, तो वहाँ तो अछूतों ने अद्भुत आत्मसंयम दिखलाया है। प्रश्न के दूसरे भाग से तो ब्राह्मणों की ओर से हिंसा की संभावना प्रतीत होती है। यदि वे हिंसा का प्रश्रय लें, तो मुझे दुःख होगा। मेरी सम्मति

में, ऐसी दशा में, वे अपना धर्म-भाव नहीं, किंतु धर्म के प्रति अपनी उपेक्षा तथा अज्ञान ही व्यक्त करेंगे।

(१७) क्या आपका यह कहना है कि संसार में सभी बराबर हो जायँ, और जाति, धर्म, वर्ण तथा व्यवसाय के अनुसार कोई भेद न रह जाय ?

मानवता के मौलिक अधिकारों को ध्यान में रखते हुए यही विधान उचित प्रतीत होता है। यह स्पष्ट देखने में आता है कि जाति-धर्म-वर्ण आदि का भेद रहने पर भी मनुष्यों में कुछ बातें समान रहती हैं—जैसे भूख, प्यास इत्यादि।

(१८) कर्म-बंधन समाप्त कर संसार की माया-ममता से परे पहुँचनेवाली महान् आत्माओं ने जिस महान् दार्शनिक सत्य को अपनाया है, क्या वह साधारण गृहस्थ के लिये भी उपयुक्त होगा, जिसके लिये कर्म-बंधन को त्यागने तथा जन्म-मरण से छुटकारा प्राप्त करने के लिये ऋषि-मुनि एक निश्चित विधान बना गए हैं, तथा जिस पर चलने से ही उसका कल्याण हो सकता है ?

जन्मना किसी व्यक्ति को अछूत नहीं समझना चाहिए। यह एक सीधी-सादी सच्ची बात है, जिसके भीतर कोई बहुत बड़ा दार्शनिक सत्य नहीं छिपा हुआ है। यह इतना सादा सत्य है कि केवल घोर सनातनी हिंदुओं को छोड़कर संसार के हर कोने में इसका मान तथा पालन होता है। मैं तो इस बात में विश्वास ही नहीं रखता कि ऋषियों ने छुआछूत की ऐसी शिक्षा दी थी, जिस प्रकार हम उसका पालन करते हैं।

सहस्रमुखी राक्षस

[किंतु प्रश्नों की लड़ी समाप्त नहीं हुई। लोगों की कुछ धार्मिक, कुछ शास्त्रीय, कुछ वैज्ञानिक तथा कुछ आध्यात्मिक शंकाएँ बनी ही रहीं। फलतः गांधीजी पुनः शंका-समाधान करते हैं।—संपादक]

दुनिया में छुआछूत सबसे अधिक भयंकर रूप में प्रचलित है। सहस्र मुखवाले राक्षस के समान यह प्रथा अपनी ज़हरीली जीभ से समाज को डस रही है। एक स्थान से एक संवाददाता लिखते हैं—

"सनातनियों को ऐसा भय हो रहा है कि छुआछूत-भेद-भाव को मिटाने के प्रचारक इस समस्या और उसकी विषमताओं को ऐसी सीमा तक ले जाने की चेष्टा करेंगे, जिससे बखेड़ा मचेगा, और अनावश्यक झगड़ा पैदा होगा। मैं आपसे नीचे कुछ प्रश्न कर रहा हूँ, जिससे यह मालूम हो जाय कि आप किस दर्जे तक इस सुधार-कार्य को ले जाना चाहते हैं, और आपकी दृष्टि में इस कार्य की क्या व्याख्या है।"

मैं नहीं समझता कि इस प्रथा में सुधार कराने का प्रचारकों ने अभी तक कोई ऐसा काम किया है, जिससे कोई ऐसा झगड़ा पैदा हो जाय। पर मैं इस प्रश्न का उत्तर दे देना चाहता हूँ। ऐसे सज्जनों के मन में भी, जो इस आंदोलन का समर्थन करना चाहते हैं, पर युगों से जमे हुए अंध-विश्वासों के कारण इसमें योग नहीं दे सकते, ऐसी शंकाएँ उठ सकती हैं। इसलिये मैं इस प्रश्नावली का उत्तर देना ही उचित समझता हूँ।

संवाददाता का पहला प्रश्न है—

क्या आपकी सम्मति में वर्णाश्रम धर्म के सिद्धांत भारतीय राष्ट्रीयता की रचना में असंगत हैं?

पहले तो वर्णाश्रम और आजकल की जाति-पाँति तथा छुआछूत का कोई संबंध नहीं है। दूसरे, जहाँ तक वर्णाश्रम का मेरा ज्ञान है, भारतीय राष्ट्रीयता की प्रगति में उससे कोई असंगति नहीं होती। इसके विपरीत, यदि वर्णाश्रम की मेरी परिभाषा सत्य है, तो उससे वास्तविक राष्ट्रीय भावना का विकास ही होगा।

दूसरा प्रश्न है—

क्या आपकी सम्मति में स्पर्श तथा दर्शन का दोष वैदिक काल से ही माना जाता है?

यद्यपि इस विषय में मुझे निजी तथा बिलकुल ठीक ज्ञान नहीं है, फिर भी मुझे वेदों की पवित्रता में पूरा विश्वास है। इसीलिये मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं होता कि वेदों में ऐसे किसी दोष की कोई आज्ञा नहीं है। किंतु इस विषय में मुझसे कहीं अधिक अधिकार-पूर्वक श्रीयुत चिंतामणि विनायक वैद्य और पंडित सातवलकेर बोल सकते हैं। फिर भी मैं यह कह देना चाहता हूँ कि वैदिक काल से ही कोई वस्तु क्यों न चली आ रही हो, पर यदि वह नैतिकता की दृष्टि से कलुषित है, तो उसे यह सोचकर कि यह वैदिक मूल-भाव के ही नहीं, कर्तव्य-शास्त्र के मूल-भाव के विपरीत होने के ही कारण त्याज्य है।

अन्य चार प्रश्नों को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है—

"क्या आपको यह नहीं मालूम है कि आकर्षण-शक्ति के विधान के ज्ञान पर ही 'कर्मकांड' का सिद्धांत निर्भर करता है। इसीलिये स्पर्श तथा दर्शन-दोष, जन्मना अपवित्रता तथा मृत्युना अपवित्रता का दोष मन की शुद्धि के विचार से माना जाता है।

जहाँ तक इनका इस दृष्टि से संबंध है, उनका कुछ सापेक्षिक

मूल्य भी है, पर वेद, शास्त्र, पुराण संसार के अन्य सभी धर्मों के समान स्पष्ट रूप से यह घोषित करते हैं कि मन की शुद्धि आंतरिक विषय है। जितना मन का मन पर प्रभाव पड़ता है, उतना शरीर का शरीर पर नहीं। यदि केवल बाहरी शुद्धि की क्रियाएँ की जायँ, तो उससे आत्मा का हनन होता है। बाहरी शुद्धि की क्रियाओं का परिणाम यह होता है कि आदमी अपने को दूसरों से बड़ा समझने लगता है, दूसरों के साथ पशु का-सा व्यवहार करता है, और इस प्रकार उसकी आत्मा का हनन होता है।

सातवाँ प्रश्न है—

क्या आपकी सम्मति में जो वस्तु, जो नियम जीवन्मुक्तों के लिये लागू होता है, वह साधारण पुरुषों के लिये भी हितकर हो सकता है?

मेरी समझ में, संसार में रहनेवाला, नर-देह-धारी चाहे कितनी भी उच्च आत्मा क्यों न हो, उसका कार्य तथा उसके लिये लोगों के प्रति व्यवहार-नियम ऐसा विशिष्ट होगा कि दूसरा यदि उसे अपनाएगा, तो वह घातक सिद्ध होगा। छुआछूत का भूत आत्मा के विकास के लिये हानिकर सिद्ध हो चुका है। यह नियम हिंदू-धर्म के श्रेष्ठतम तथा उदार सिद्धांतों के विपरीत है।

तब प्रश्न होता है—

क्या आप वर्ण-धर्म में विश्वास नहीं रखते?

मैं इस विषय में अपना मत प्रकट कर चुका हूँ। मेरी सम्मति में वर्ण-धर्म में छुआछूत तथा बड़प्पन-छुटाई को कोई स्थान नहीं है।

फिर प्रश्न है—छुआछूत का किस समय ख्याल नहीं रखना चाहिए, यह निम्न-लिखित श्लोक से प्रकट होता है—

कल्याणे तीर्थयात्रायां राष्ट्रकोपे च संभ्रमे ;
देवोत्सवे च दारिद्रे स्पृष्टिदोषो न विद्यते ।

(अच्छे अवसर पर, तीर्थ-यात्रा में, राजनीतिक आंदोलन में, भय के अवसर पर, देवतों के उत्सवों पर तथा दरिद्रता में स्पर्शास्पर्श का दोष नहीं रहता ।)

इन विशेष अवसरों की आज्ञाओं से ही मेरा सिद्धांत प्रतिपादित हो जाता है। क्या आप इस अधिकार-पूर्ण श्लोक का समुचित उपयोग कर सीमा का निर्धारण कर देंगे ?

जिस बुद्धिमान् ने इस श्लोक को बनाया है, उसने विशेष अवसरों की इतनी लंबी सूची दी है कि आदमी के जीवन में कभी ऐसा अवसर आ ही नहीं सकता, जब इनमें से कोई बात न हो ! अछूत-प्रथा के समर्थकों से मैं पूछता हूँ कि कोई ऐसा अवसर बतलाएँ, जब व्यक्ति सुखी-दुखी, भयान्वित, हर्षोत्फुल्ल तथा दारिद्र्य इत्यादि में से किसी एक की दशा में न रहता हो । फिर भी संवाद-दाता को पता नहीं कि उन लोगों का विचार कितना शून्य तथा दरिद्रता-पूर्ण है, जो अछूत-प्रथा का समर्थन केवल इसीलिये करते हैं कि वह परंपरा से चली आ रही है । अभी तक मुझे तो अस्पर्श्य अछूत, अदर्शनीय व्यक्ति की समझ में आने लायक़ कोई व्याख्या पढ़ने-देखने को नहीं मिली ।

अंतिम प्रश्न है—

राजनीति को आध्यात्मिक रूप प्रदान करने की चेष्टा में आप किस सीमा तक इस प्रथा को मिटाना चाहते हैं ?

इसकी तो कोई सीमा ही नहीं है । राजनीति के आध्यात्मिककरण का प्रारंभ इसी से होता है कि आजकल अछूत-प्रथा जिस प्रकार वर्तमान है, उसका समूल उच्छेदन कर दिया जाय । जन्मना किसी को अछूत मानना बड़ी गर्हित बात है, तथा मानवीय स्वभाव की धार्मिक वृत्ति के लिये एक कलुषित सिद्धांत है ।

गंदा भोजन और गंदा विचार

[भारत में ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जो अछूतों के प्रति अपना कर्तव्य समझते हुए भी प्राचीन रूढ़ियों के कारण आगे नहीं बढ़ सकते। कुछ ऐसे हैं, जो आगे बढ़ना चाहते हैं, पर अछूतों—हरिजनों—के मद्य-मांस—त्याज्य भोजन—सेवन से उनको नहीं अपना सकते। इनको गांधीजी बड़ा मार्मिक उत्तर देते हैं। गांधीजी के इस तर्क का कोई उत्तर ही नहीं हो सकता कि "संसार में गंदा भोजन करनेवाला अछूत है या गंदा विचार रखनेवाला?"—संपादक]

सदियों से जो अंध-विश्वास तथा परंपरा मनुष्य के हृदय में अपना घर बना लेती है, वह बहुत देर में उसे छोड़ती है। ऐसे बहुत-से सनातनी हिंदू हैं, जो उदारचेता हैं, पर परंपरा तथा रूढ़ि ने उनके हृदय में जो स्थान बना लिया है, उसके कारण वे अछूतों के साथ दुर्व्यवहार में कोई दूषण नहीं देख पाते। एक संवाददाता लिखते हैं—

'मैं आपका एक विनम्र अनुयायी हूँ, यद्यपि मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं अग्रिम-श्रेणी के अनुयायियों में से हूँ। पर अछूत-प्रश्न पर मेरे विचार तथा भाव आपके समान उग्र नहीं हैं। मैं उनसे सहमत नहीं हूँ, जो यह कहते हैं कि अछूत दबाए तथा गिराए जा रहे हैं। मैं इसे अपना कर्तव्य समझता हूँ कि आपको नम्रता-पूर्वक सूचित करूँ कि अछूत पहले स्वाधीन तथा सुखी थे। पंचमों का गत तथा वर्तमान इतिहास देखकर मैं उनकी आत्मा की सराहना नहीं कर सकता। उसने उन्हें कहीं का न छोड़ा। शिक्षा

कही जानेवाली वस्तु तथा सरकारी ओहदों के टुकड़ों की प्यास ने उन्हें और भी दुर्गति में डाल रक्खा है। जो भी व्यक्ति शारीरिक परिश्रम त्यागकर नौकरी-चाकरी या ओहदे पर आता है, वह और भी बुरी दशा को प्राप्त करता है। हम ब्राह्मणों का यही दुःखदायी अनुभव है। मुझे वह दिन याद है, जब पंचमों को कुटुंब का एक अंग समझा जाता था। प्रतिमास उनके भोजन-छाजन का प्रबंध किया जाता था। पर अब वे दिन चले गए। अधिकांश अछूत या तो विदेश जाकर ग़ुलामी कर रहे हैं, या फ़ौज में १५) रुपए माहवार के शाही वेतन पर नौकरी कर रहे हैं। मुझे भय है कि यदि आप उनका ऐसा उद्धार करना चाहते हैं, तो वह सफल न हो सकेगा। निजी तौर पर मैं यह महसूस करता हूँ कि उनका सामाजिक सुधार करना चाहिए, पर ऐसा तो एक दिन में जादू से नहीं हो सकता। उनकी शिक्षा के लिये करोड़ों रुपया ख़र्च करना होगा। उनकी आर्थिक दुर्दशा सुधारने और सन्मार्ग पर लाने के लिये करोड़ों रुपया ख़र्च करना होगा। सदियों से जीव-हत्या तथा गोमांस-भोजन, मदिरा-सेवन की लत को सुधारना होगा। इन्हीं तीन बातों ने प्रधानतः उन्हें समाज का एक बहिष्कृत अंग बना दिया। वे ग्राम के एक कोने में अलग रहने के लिये छोड़ दिए गए। यदि ऐसा न होगा, और केवल दूसरे वर्गों से यह कहा जायगा कि वे हरिजनों को गले से लगावें, तो इससे समाज की मर्यादा भंग होगी, और मैं नहीं समझता कि आप ऐसा करना चाहते हैं।"

मर्यादा तो भंग होती है अछूत को न छूने में। मदिरा-सेवन, गोमांस-भक्षण तथा त्याज्य भोजन के भक्षण से क्या होता है? वह निस्संदेह बुरा काम करता है, पर यह काम उतना बुरा नहीं है, जितना अधिक परिश्रम तथा गुप्त पाप करना। जैसे समाज किसी घोर पापी को अछूत नहीं समझता, इसी प्रकार वह भी अछूत नहीं

समझा जा सकता। पापियों से घृणा नहीं करनी चाहिए। उन पर दया करनी चाहिए। उनकी सहायता करनी चाहिए कि वे पाप से मुक्त हो जायँ। हमें अपनी अहिंसा का गर्व है, पर जब तक हिंदुओं में छुआछूत है, हम अपने को अहिंसक नहीं कह सकते। अछूतों में जिन दुर्गुणों की लेखक शिकायत करता है, उनकी ज़िम्मेदारी हमारे सिर है। हम उनके सुधार के लिये क्या कर रहे थे? अपने परिवार के किसी व्यक्ति के सुधार के लिये हम कितनी बड़ी संपत्ति लगा देते हैं! क्या अछूत हिंदू-परिवार के एक अंग—व्यक्ति—नहीं हैं। हिंदू-धर्म का तो शिक्षा है कि विश्व-मात्र को, मनुष्य-मात्र को अविभक्त कुटुंब समझो, और संसार में हरएक परस्पर के दोष—पाप—का ज़िम्मेदार और भागी होता है। यदि हम इस महान् सिद्धांत को व्यापक रूप में न स्वीकार कर सकें, तो कम-से-कम हिंदू होने के नाते अछूतों को तो अपना समझें।

और, गंदा भोजन करना या गंदा विचार धारण करना, दो में से कौन चीज़ बुरी है? रोज़ हमारे हृदय में असंख्य अछूत अथवा गंदे विचार उठा करते हैं। हमें अपनी रक्षा उन्हीं से करनी चाहिए, क्योंकि वे ही वास्तविक अछूत और त्याज्य वस्तुएँ हैं। हमने अपने अछूत भाइयों के साथ जो अन्याय किया है, उसका प्रायश्चित्त उनके प्रेम-पूर्ण आलिंगन से ही होगा। संवाददाता को अछूतों की सेवा करने के कर्तव्य के संबंध में कोई आशंका नहीं है। हम उनकी किस प्रकार सेवा कर सकते हैं, यदि उनके दर्शन-मात्र से ही हम गंदे हो जाते हैं।

अहम्मन्यता

[ब्राह्मण की अनुचित अहम्मन्यता का अब समय नहीं रहा। स्पर्श या वायु-दोष की कल्पना करना भी अनुचित प्रतीत होता है। ब्राह्मण चाहे जैसा भी हो, पवित्र है। हरिजन चाहे कितना ही पवित्र हो, अछूत ही होना चाहिए, यह कोरी आत्मप्रवंचना है। गांधीजी ने 'यंग इंडिया' में इस महत्त्व-पूर्ण बात को साफ़ कर दिया है।—संपादक]

ट्रावंकोर से एक महाशय लिखते हैं—

"ब्राह्मण और उनके रीति-रिवाजों, आचारों के संबंध में कुछ ग़लतफ़हमी मालूम होती है। आप अहिंसा की प्रशंसा करते हैं, पर केवल हम ब्राह्मण ही धार्मिक रूप से इस वस्तु का पालन करते हैं। जो व्यक्ति इसकी अवज्ञा करता है, उसे हम जाति-बाहर कर देते हैं। जीव-हत्या करनेवाले या मांस खानेवाले के संपर्क को ही हम पाप-पूर्ण मानते हैं। क़साई, मछुए, ताड़ी निकालनेवाले के आगमन-मात्र से ही या मांस खानेवाले, मदिरा सेवन करनेवाले अथवा अधार्मिक लोगों के स्पर्श-मात्र से ही भौतिक वायु-मंडल दूषित हो जाता है। तपस् नष्ट होकर शुद्ध आकर्षण-शक्ति नष्ट हो जाती है।

"इसी को हम गंदा होना समझते हैं। इन्हीं नियमों के पालन के कारण ब्राह्मण इतने युग से अपने परंपरागत सदाचार को निभाते आ रहे हैं। तब से उनका समय, उनका भाग्य बहुत बदल गया है, पर ब्राह्मण न बदले। यदि इन्हें बिना रोक-टोक के हरएक के साथ स्वतंत्रता-पूर्वक मिलने दिया जाय, तो ब्राह्मण गई-गुज़री

अत्यंत गिरी जातियों से भी हीन दशा को प्राप्त होंगे, वे ख़राब-से-ख़राब पाप आसानी से करने लगेंगे, वे छिपे-छिपे सभी दुर्व्यसनों का सेवन कर सकेंगे, जिसे छुआछूत के कारण गुप्त रखना बहुत कठिन होगा, और ऊपर से पवित्रता का आडंबर बनाए रहेंगे। हमें मालूम है कि आजकल नाम-मात्र के बहुत-से ब्राह्मण ऐसे ही हैं, और वे दूसरों को भी अपनी गिरी दशा में मिलाने के लिये दीन-दुनिया एक कर रहे हैं।

"एक ऐसे देश में, जहाँ समुदायों की विभिन्नता आचार-विचार की विभिन्नता पर निर्भर है (पश्चिम की तरह रंग, धन या शक्ति की विभिन्नता पर नहीं), और भिन्न केंद्रों में व्यावसायिक, सामाजिक तथा पारिवारिक सुविधाओं के विचार से रहती है, जैसा कि हमारे देश में उनके बीच की स्पष्ट भिन्नता से प्रतीत होता है, यदि कोई समुदाय या व्यक्ति अपने आचार-विचार बदल दे, तो वह बहुत समय तक छिपा नहीं रह सकता।

"इस दशा के विपरीत, यदि किसी को क़साई, मांसाहारी और मद्यप के बीच रहने दिया जाय, तो उसके लिये यह असंभव होगा कि वहाँ वह अपने उन गुणों का पालन कर सके, जो उस समुदाय के लिये नए, अनोखे तथा अज्ञात हैं। यह तो स्वाभाविक बात है कि हरएक व्यक्ति अपनी रुचि तथा प्रकृति के अनुकूल वातावरण में रहना चाहता है। इसीलिये यह आवश्यक है कि भौतिक, नैतिक और धार्मिक रूप से ब्राह्मणों के निवास-स्थान को क़साई, मछुए, ताड़ी निकालनेवाले आदि के प्रवेश से मुक्त रक्खा जाय।

"भारत में व्यवसाय और जाति-प्रथा का अविभक्त संबंध है। इसीलिये यह स्वाभाविक बात है कि जिस जाति का व्यक्ति होगा, उसी जाति के व्यवसाय का पालन करता होगा।

"इन्हीं कारणों से हमारे लिये अछूत का स्पर्श या उसे छूना,

दोनों मना किया गया है। इससे हमारा समुदाय केवल दूषित होने से ही नहीं बचता, प्रत्युत ऐसे पापकर्ता को समाज बाहर निकालने या धार्मिक दंड देने की व्यवस्था करता है, और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से उन लोगों को बुरे आचरण के परित्याग की सीख देता है, जो हमसे स्वतंत्रता-पूर्वक मिलना चाहते हैं।

"इसलिये आप उनसे सार्वजनिक रूप से पाप के परित्याग तथा नित्य स्नान, ध्यान, व्रत, पाठ आदि के साथ चर्खा और बुनना को अपनाने की सलाह दें, और बतला दें कि यदि वे कुछ वर्षों में अपने को सबके सामने जाने लायक़ बनाना चाहते हैं, तो यही एक-मात्र उपाय है। साथ ही, वे उन लोगों का संपर्क छोड़ दें, जो उन्हीं के समुदाय के होते हुए भी अपनी आदत नहीं बदलने को तैयार हैं। शास्त्रों ने भी उनके उद्धार की यही विधि बतलाई है। चूँकि मनुष्य के गुणावगुण की परख का कोई उपाय नहीं है, इसलिये किसी की मानसिक पवित्रता-अपवित्रता की बात करना व्यर्थ है। सार्वजनिक आचार से ही किसी व्यक्ति का निजी गुण जान लेना चाहिए। इसलिये जो व्यक्ति हमारा-आपका अहिंसा-धर्म कम-से-कम इस सीमा तक अपनाने के लिये तैयार नहीं है कि जीव-वध, मछली या मांस खाना छोड़ दे, वह इस योग्य नहीं है कि परंपरा से उसके दर्शन-मात्र का निर्धारित दोष दूर कर दिया जाय।"

मैंने संवाददाता के प्रश्नों का कई बार उत्तर दिया है। फिर भी उसके तर्क की निस्सारता को ज़ाहिर कर देना उचित है। पहले तो ब्राह्मणों का निरामिषता का दावा बिलकुल ठीक नहीं है। यह बात केवल दक्षिण के ब्राह्मणों में ही लागू हो सकती है। पर अन्य स्थानों में—काश्मीर, बंगाल आदि प्रांतों में—मछली और मांस का आज़ादी से उपयोग होता है। इसके अलावा सभी मांसाहारी को देखना दोष नहीं माना जाता। पर पूर्ण पवित्र होने पर भी 'अस्पृश्य'

परिवार में जन्म लेने के कारण ही अछूत को छूना, देखना या उसका पास आना पाप समझा जाता है। क्या ब्राह्मण मांसाहारी अधिकारारूढ़ सरकारी अब्राह्मणों से कंधा नहीं मिलाते? क्या वे मांस-भक्षी देशी नरेशों का अभिवादन नहीं करते?

संवाददाता-ऐसे संभ्रांत तथा संस्कृत व्यक्ति का एक तर्क-हीन तथा विनष्ट-प्राय प्रथा के असमर्थन में यह अंध-उत्साह देखकर आश्चर्य होता है। संवाददाता स्वयं अपने तर्क की स्पष्ट विषमताओं को भूल जाता है। संवाददाता मांस-भक्षण के एक मच्छड़ के समान तर्क को इतना तूल देता है, पर एक ख़याली पवित्रता की रक्षा के लिये जान-बूझकर करोड़ों भाइयों को दबाने की चेष्टा में जो तिगुनी हिंसा होती है, उसके ऊँट को सरलता-पूर्वक निगल जाता है। संवाददाता को मेरी सलाह है कि ऐसी निरामिषता से क्या लाभ, जिसकी रक्षा के लिये अपने भाइयों को जाति-बाहर करना पड़े। इस प्रकार से जिस चीज़ की रक्षा की जायगी, वह ज़रा से हवा के झोंके से उड़ जायगी। मैं स्वयं निरामिषता को बहुत बड़ी चीज़ समझता हूँ। मैं यह मानता हूँ कि अपनी अन्य संयमशीलता के साथ घोर निरामिषता के कारण ही ब्राह्मणों की इतनी आध्यात्मिक उन्नति हुई है। जिस समय वे अपनी उन्नति की चरम सीमा पर थे, उनको बाहरी संरक्षण की आवश्यकता नहीं होती थी। जो गुण बाहरी प्रभाव से अपनी रक्षा नहीं कर सकता, उसकी जीवनी-शक्ति नष्ट हो जाती है।

इसके अतिरिक्त अब वह समय नहीं रहा कि संवाददाता जिस प्रकार का संरक्षण चाहता है, वह ब्राह्मणों को प्राप्त हो सके। सौभाग्य से ऐसे ब्राह्मणों की संख्या नित्य बढ़ती जा रही है, जो अपने साथियों की नित्य की कटुता तथा विरोध की लेश-मात्र भी परवा न कर सुधार-आंदोलन का नेतृत्व कर रहे हैं, और ऐसे

संरक्षण से घृणा करते हैं । और, उन्हीं के हाथों सुधार की प्रगति की सबसे अधिक आशा है ।

संवाददाता की इच्छा है कि मैं दलित जातियों को पवित्रता की शिक्षा दूँ । अवश्य वह 'यंग इंडिया' नहीं पढ़ते, अन्यथा उन्हें मालूम हो गया होता कि मैं उन्हें नित्य ऐसी सीख देता हूँ । मुझे उन्हें सूचित करते हर्ष होता है कि वे मेरी प्रार्थना के अनुसार बड़ी संतोष-जनक उन्नति कर रहे हैं । मैं संवाददाता को निमंत्रण देता हूँ कि वे भी उन व्यक्तियों में शामिल हो जायँ, जो इन सदियों से पीड़ित स्त्री-पुरुषों में सच्चे मित्र के समान, न कि संरक्षकों के समान, सेवा कर रहे हैं ।

जातियों का अपराध

[अदालतों में भी हरिजनों के साथ न्याय हो सकता है या नहीं ? असहयोग का सिद्धांत मानते हुए भी क्या सवर्णों को अदालत की शरण लेकर हरिजनों के स्वत्व का प्रतिपालन करना चाहिए। स्वराज्य के समय जब कि कानून और दंड हमारे हाथ में होगा, उस समय हरिजन की क्या दशा होगी ? उसके अधिकार बढ़ेंगे ? यदि हाँ, तो अभी से क्यों नहीं वे अधिकार दे दिए जाते। यदि नहीं, तो ऐसे लोगों को स्वराज्य-कार्य मिल ही नहीं सकता। हम दक्षिण-आफ्रिका में भारतीयों के साथ अन्याय के नाम पर रोते हैं। पर स्वयं अपने देश में हरिजनों के साथ हम क्या कर रहे हैं ?—संपादक]

दक्षिण-आफ्रिका में रंग तथा जाति-भेद के कारण हम दंडित हो रहे हैं। भारत में हम हिंदू अपने सहधर्मियों को जाति-अपराध के कारण दंड देते हैं। सबसे बड़ा अपराध पंचमों ने किया है कि उसे छुआ नहीं जाता, देखा नहीं जाता, इत्यादि। हमारे इन दलित भाइयों की घोरतम दुर्दशा का पता मद्रास-प्रेसिडेंसी-कोर्ट के एक मुक़द्दमे से लगता है। साफ़-सुथरा कपड़ा पहने एक पंचम दर्शन की अभिलाषा से तथा किसी को ज़रा भी दुःख पहुँचाने का ज़रा भी विचार न रखते हुए एक मंदिर में जाता है। प्रतिवर्ष वह मंदिर जाकर भगवान् को प्रणाम कर आता था, किंतु मंदिर के भीतर नहीं जाता था। पर गत वर्ष वह इतना प्रेम-विभोर हो रहा था कि मंदिर के भीतर चला गया। जब उसे अपनी भूल याद आई, तो वह निषिद्ध स्थान में आ जाने के कारण डरकर मंदिर से भागा,

पर उसे पहचाननेवाले कुछ लोगों ने उसे पकड़ लिया, और पुलिस के हवाले किया। जब मंदिर के अधिकारियों को इसका पता चला, तो उन्होंने मंदिर की शुद्धि करा ली। तब मुक़दमा चला। एक हिंदू मैजिस्ट्रेट ने अपराधी पर ७५) का जुर्माना या एक मास की कड़ी क़ैद का दंड दिया। उसने मैजिस्ट्रेट के धर्म की बेइज़्ज़ती की थी। पर अपील की गई। अदालत में ख़ूब तर्क-वितर्क हुआ। फ़ैसला रोकना पड़ा। और, जब सज़ा रद्द कर दी गई, तो इस कारण नहीं कि बेचारे पंचम को मंदिर-प्रवेश का अधिकार था, प्रत्युत इसलिये कि छोटी अदालत बेइज़्ज़ती नहीं साबित कर सकी थी। यह न्याय स्वत्व, धर्म या नैतिकता की विजय नहीं है।

अपील की सफलता से पंचम को यही तसल्ली प्राप्त हुई कि भूलकर मंदिर-प्रवेश उसके लिये निषिद्ध नहीं है, वह यदि भक्ति के अतिरेक में मंदिर के भीतर चला गया, तो उसे जेल नहीं जाना पड़ेगा। पर यदि वह या उसके साथी फिर कभी मंदिर जाने की जुर्रत करेंगे, तो यह बहुत संभव है कि उनसे घृणा करनेवाले उन्हें मार न डालेंगे, तो कम-से-कम बहुत कठोर दंड तो दिया ही जायगा।

यह एक विचित्र परिस्थिति है। दक्षिण-आफ़्रिका में अपने देश-भाइयों के साथ व्यवहार हमें पसंद नहीं। हमें उसका दुःख है। हम स्वराज्य स्थापित करने के लिये उत्सुक हो रहे हैं। पर हम स्वयं अपना अन्याय नहीं देखते कि अपने सहधर्मियों (पंचम अंश) के साथ कितना बुरा व्यवहार कर रहे हैं। उनके साथ हम कुत्तों से भी बुरा व्यवहार करते हैं, क्योंकि कुत्ते भी अछूत नहीं होते। हममें से कुछ तो उन्हें सदैव अपने साथ रखते हैं।

हमारी स्वराज्य की योजना में अछूत का क्या स्थान होगा? यदि उस समय उन पर कोई बाधा-बंधन या रुकावट न रह जायगी,

तो हम आज से ही इसकी घोषणा क्यों नहीं कर देते ? और, यदि आज हम शक्ति-हीन हैं, ऐसा नहीं कर सकते, तो क्या हम स्वराज्य के समय और भी शक्ति-हीन न हो जायँगे ?

हम इन प्रश्नों की ओर से अपना कान बंद कर दें, आँख मूँद लें, पर पंचमों के लिये ये बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं । यदि हम सभी इस सामाजिक तथा धार्मिक निरंकुशता को दूर करने के लिये नहीं उठ खड़े होते, तो फ़ैसला हिंदू-धर्म के ही विरुद्ध होगा ।

इस दिशा में बहुत कुछ किया गया है, पर जब तक मंदिर-प्रवेश के कारण पंचमों पर फ़ौजदारी का मुक़दमा चल सकता है, जब तक पंचमों को मंदिर में प्रवेश और उपासना का अधिकार नहीं दिया जा सकता, तथा स्कूल, कुएँ और अन्य सार्वजनिक स्थान खोल नहीं दिए जाते, तब तक हमारा पाप ज्यों-का-त्यों बना ही रहेगा । दक्षिण-आफ्रिका में हम योरपियनों से जो अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं, हमें वे ही अधिकार पहले अपने देश में पंचमों को प्रदान करना चाहिए ।

पर इस मामले से कुछ तसल्ली भी होती है । सज़ा रद्द कर दी गई । यदि बहुत-से सवर्ण हिंदुओं ने कथित अपराधी का पक्ष न लिया होता, तथा उसकी सहायता न की होती, तो अपील की सुनवाई का प्रबंध नहीं हो सकता था । सबसे रोचक बात तो यह थी की श्रीयुत सी० राजगोपालाचारी अभियुक्त की ओर से पैरवी कर रहे थे, और मेरी समझ में असहयोग के सिद्धांत का उन्होंने सर्वथा उचित उपयोग किया । यदि उनके हस्तक्षेप से अभियुक्त छूट सकता था, और फिर भी अदालत में जाकर यदि वह चुपचाप बैठ रहते, और मन में अपनी सहयोग की पवित्रता पर हर्ष मनाते रहते, तो वह उसकी सज़ा के अपराधी होते । पंचम को असहयोग के बारे में कुछ भी नहीं मालूम था । वह जुर्माने या क़ैद से बचने के

लिये अपील कर रहा था। मैं चाहता हूँ, हरएक हिंदू 'अछूत' का मित्र बने, और धर्म के नाम पर उस पर अत्याचार करनेवाली रीतियों से संघर्ष करने या छुड़ाने में उसकी सहायता करे। उसे यह कार्य अपना कर्तव्य समझना चाहिए। 'अछूत' का मंदिर-प्रवेश नहीं, किंतु मंदिर-प्रवेश-निषेध मनुष्यता तथा धर्म का अपमान है।

मैं विजय के लिये रोता हूँ

[सत्य तथा अहिंसा गांधीजी के जीवन के दो मुख्य सिद्धांत हैं। पर जब वह हरिजनों के लिये प्राण देने लगते हैं, तब शंका होती है कि ऐसा क्यों करते हैं ? सत्य के लिये प्राण क्यों नहीं देते। पर सत्य तथा अहिंसा, खद्दर तथा 'अछूत' का कितना संबंध है, तथा हरिजन के लिये प्राण देना सत्य के लिये प्राण देना किस प्रकार कहा जायगा, यह इस व्याख्यान से स्पष्ट हो जायगा।—संपादक]

१६२५ में गांधीजी ने काठियावाड़ का दौरा किया था, और उसी सिलसिले में राजकोट गए थे। राजकोट में प्रतिनिधि-सभा ने उनको मान-पत्र भेंट किया था, और उसकी ओर से श्रीमान् ठाकुर साहब ने वह मान-पत्र गांधीजी के हाथ में दिया था। यह सोना का पानी चढ़ाए चाँदी के एक भारी पात्र में था, तथा उसमें गांधीजी की हिंदू-मुसलिम ऐक्य, सत्य तथा अहिंसा के प्रति सेवाओं की प्रशंसा की गई थी। खद्दर-कार्य या हरिजन-सेवा का कोई ज़िक्र न था, यद्यपि गांधीजी ने इस दौरे में इन दोनो बातों पर काफ़ी ज़ोर दिया था।

मान-पत्र पढ़े जाने के पूर्व कुछ शास्त्रियों ने गांधीजी को आशीर्वाद-स्वरूप, इस अवसर के लिये रचे, संस्कृत-श्लोक पढ़े।

दरबार-गढ़ में आज पैर रखते ही मुझे अपने बचपन की एक घटना याद आ गई। घटना यहीं की है, और तब से मुझे अभी तक याद है। उन दिनों यह रिवाज था कि राजा के यहाँ ब्याह पड़ने पर दूल्हनवाले राज्य में, ब्याह के पहले, एक डेपुटेशन भेजा

जाता था। उस डेपुटेशन में मंत्रियों के लड़के शामिल होते। मेरे पिता उस समय मंत्री थे, पर वह कभी अपने लड़कों को नहीं भेजते थे। मैं जिस समय की घटना का वर्णन कर रहा हूँ, ग्वालपुर और धर्मपुर ऐसा ही जत्था जानेवाला था। पर पिताजी ने हम लोगों को न जाने दिया। मेरी भली माता में सांसारिकता अधिक थी, और वह यह नहीं चाहती थी कि इस पद के पुरस्कारों से हम वंचित रक्खे जायँ। अतएव उसने मेरे भाई तथा मुझसे यह ज़ोर दिया कि हम लोग स्वर्गीय ठाकुर साहब के पास जाकर रोने लगें। जब वह हमसे पूछें कि मामला क्या है, तो हम कह दें कि हम धर्मपुर जाना चाहते हैं। हमने इस सलाह के अनुसार काम किया, और धर्मपुर नहीं, बल्कि ग्वालपुर भेजे गए। आज भी मैं अपनी सफलता और विजय के लिये रोऊँगा। मैं नाम, यश, संपत्ति या पद के लिये नहीं रो रहा हूँ। जिन शास्त्रियों ने मुझे आशीर्वाद दिया है, उन्होंने कहा है कि कांति को उपयुक्त भर्ता न मिलने के कारण वह अभी तक अक्षत-योनि कुमारी ही है, और उनका आशीर्वाद है कि वह लज्जाशीला सुंदरी अंत में मेरा वरण करे। ईश्वर करे, वह सदैव कौमार्य का सुख भोगे। यदि उसने मुझे चुना, तो मैं तो कहीं का न रहूँगा। इसीलिये मैं कीर्ति के लिये नहीं रो रहा हूँ, मैं उन दो-एक बातों के लिये रो रहा हूँ, जिन्हें आपने मुझे नहीं दिया है।

मेरे विषय में आपने जो उदार तथा कृपालु भाव प्रकट किए हैं, उसके प्रति मैं आप लोगों का बड़ा कृतज्ञ हूँ। ईश्वर करे, मैं उन शुभ कामनाओं के योग्य होऊँ। मैं यह विश्वास कर अपने को प्रसन्न नहीं करना चाहता कि आपने मेरे विषय में जो कुछ कहा है, मैं उसके योग्य हूँ। मैं उन लोगों में से हूँ, जो गेले रहना चाहते हैं। ईश्वर करे, मैं आपकी प्रशंसा से, प्रतिष्ठा से अविचलित रहूँ।

इसलिये धन्यवाद देते हुए भी मैं आपसे दो-एक बात की शिका-

व्यक्त कर देना चाहता हूँ। जान-बूझकर या अनजान से आपने उन सब बातों का ज़िक्र ही अपने 'अभिनंदन' में नहीं किया है। आपका यह कहना सत्य है कि सत्य तथा अहिंसा मेरे जीवन का प्रधान लक्ष्य (सिद्धांत) है। इन दो जीवन-लक्ष्यों के बिना मैं निर्जीव शव के समान हो जाऊँगा। पर मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि आपने दो चीज़ों का एकदम ज़िक्र नहीं किया है, जिनका पालन, अनुकरण अहिंसा तथा सत्य के सिद्धांत से अविभाजनीय है। मेरा मतलब खद्दर और अछूतोद्धार से है। एक प्रकार से ये दोनो बातें हिंदू-मुसलिम ऐक्य से भी अधिक ज़रूरी हैं, क्योंकि बिना इनके हिंदू-मुसलिम ऐक्य हो ही नहीं सकता। जब तक हम हिंदू-धर्म को अछूत-प्रथा के कलंक से मुक्त नहीं कर देते, तब तक वास्तविक हिंदू-मुसलिम ऐक्य प्राप्त करना असंभव है।

एक अत्यंत विचारशील मुसलमान ने मुझसे कहा था कि जब तक अछूत-प्रथा हिंदू-धर्म में वर्तमान है, मुसलमान उस धर्म या उसके अनुयायी का बहुत कम आदर कर सकते हैं। मैं अगणित बार कह चुका हूँ कि शास्त्रों में अछूत-समुदाय का कहीं उल्लेख-मात्र नहीं है। शास्त्रों में यह कहीं नहीं लिखा है कि जुलाहे या भंगी अछूत हैं। मैं तो दोनो हूँ। बचपन के समय मेरा मल साफ़ करने के कारण मेरी माता तो सचमुच भंगिन थी, पर इसी कारण वह भंगिन नहीं बन गई। तब फिर, इसी प्रकार की सेवा करनेवाला भंगी अछूत क्यों कहा जाय? यदि संसार के सभी शास्त्री मेरे विरुद्ध हो जायँ, फिर भी मैं घर की छतों पर खड़े होकर यह चिल्लाकर कहने के लिये तैयार हूँ कि वे ग़लती कर रहे हैं—हिंदू-धर्म में अछूत-प्रथा को स्थान देकर भूल कर रहे हैं।

इस संबंध में मैं एक बात और कह देना चाहता हूँ, जिससे मुझे शोक और हर्ष दोनो हुआ। यह देखकर हर्ष होता है कि आज के

कार्य-क्रम का पहला कार्य शास्त्रियों के आशीर्वाद से प्रारंभ होता। पर मुझे आश्चर्य होता है कि कहीं इसमें कोई झुठाई तो नहीं थी। क्या उन्होंने इस संबंध में मेरी कार्यवाइयों के प्रति स्वीकृति प्रकट की, या उन्होंने केवल इस संबंध में ठाकुर साहब की सूचित या अनुमानित इच्छा का पालन किया, और मुझे आशीर्वाद दे दिया।

अछूतोद्धार-संबंधी मेरे आंदोलन का ज़िक्र न कर आपके आशीर्वाद की ध्वनि ही असत्य प्रतीत हुई। ठाकुर साहब, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि अछूतों के प्रति दयालु हों, अपने राज्य के दलित वर्गों से मित्रता करें। शबरी और गुह दोनो ही अनुमानतः अछूत थे, पर राम ने उनको अपना सखा बनाया था। मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि उनको स्कूल, मंदिर तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश का अधिकार दें।

बालचरों को विलायती खाकी पोशाक पहने देखकर मुझे घोर दुःख होता है। मुझे उम्मीद थी कि कम-से-कम ये लोग खद्दर पहने होंगे। यदि आपके बालचरों का पहनावा खद्दर का हो, और आपकी पुलिस खद्दर पहनती हो, तो दरिद्र, अछूत, निस्सहाय विधवा के दुःख को आप दूर कर सकते हैं। इसलिये ठाकुर साहब, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, और आपकी प्रतिनिधि-सभा से अनुरोध करता हूँ कि खद्दर पहनने का निश्चय करें, और राज्य के सभी कर्मचारियों के लिये खद्दर की पोशाक बनवावें। आपने मुझे एक क़ीमती भेंट दी है। मेरे पास न तो कोई तिजोरी है, न ऐसा मज़बूत कमरा, जहाँ मैं इसको रख सकूँ। न मेरे पास आदमी हैं, जो ऐसा कमरा या तिजोरी होने पर उसकी चौकसी रक्खें। इसलिये मैं ऐसी सभी क़ीमती चीज़ों को सेठ जमनालाल बजाज को दे देता हूँ कि सार्वजनिक उपयोग के लिये वह इनकी रक्षा करें। पर मेरे पास खद्दर इकट्ठा करने के लिये काफ़ी स्थान और कमरा है, इसलिये मैं जिससे

मिलाता हूँ, खद्दर की भीख माँगता हूँ। मैं लॉर्ड रीडिंग से भी यह अनुरोध करने में नहीं हिचकिचाता कि वह स्वयं खद्दर पहनें, और अपने अर्दली को भी पहनावें।

ऐ सुयोग्य शासक, आपकी तलवार एक शक्तिशाली निशानी है। आपका मार्ग आपकी तलवार की धार की तरह है, आप सत्य के मार्ग से एक बाल बराबर भी नहीं डिग सकते। यह इस बात का सदा स्मरण दिलाता रहता है कि आपके राज्य में एक भी शराबी या अपवित्र आदमी या औरत नहीं रहना चाहिए। यह आपका कर्तव्य है कि जहाँ दुर्बलता हो, वहाँ शक्ति प्रदान कराएँ जहां गंदगी हो, वहां स्वच्छता का प्रवेश कराए। दलितों और दरिद्रों को अपना मित्र बनाइए। आपकी तलवार दूसरे की गर्दन के लिये नहीं, आपकी गर्दन के लिये है। आप अपनी प्रजा से कह सकते हैं कि ज्यों ही आप अपने अधिकार की सीमा के आगे बढ़ें, वह तलवार के घाट आपको उतार सकती है। मैं इन शब्दों में इसलिये आपसे बात कर रहा हूँ कि आपके प्रति मैं अपना कुछ कर्तव्य समझता हूँ। ठाकुर साहब, आपके पिताजी ने मेरे पिताजी को बिना शर्त कुछ भूमि की बख्शीश दी थी। इसलिये मैंने कुछ आपका नमक खाया था, और मैं अपनी नमकहलाली नहीं अदा करूँगा, यदि अवसर पर राजा के स्पष्ट लक्षणों की ओर आपका ध्यान नहीं आकर्षित करूँगा। आपने मेरा जो सम्मान किया है, उसके प्रति मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ। मैं सबसे बड़ा सम्मान यह समझता हूँ कि दरिद्र, दलित तथा अछूत की सहायता की जाय। मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि आपने ग्राम और स्कूलों में चर्खा चलवा दिया है, अपने हर विभाग में खद्दर चला दिया है, आपकी हरएक सार्वजनिक संस्था में अछूतों को प्रवेशाधिकार है। यह सुनते ही मैं दुगनी इज़्ज़त महसूस करूँगा, और आपका सादर अभिवादन करूँगा। ईश्वर आपको प्रजा-सेवा की शक्ति दे।

मंदिर-प्रवेश-सत्याग्रह

[मंदिर-प्रवेश-सत्याग्रह आजकल बड़ा महत्त्व-पूर्ण रूप धारण कर रहा है। महात्माजी के अनशन के समय हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सभी मिलकर इस आंदोलन में भाग लेने लगे थे। पर वास्तव में प्रश्न केवल हिंदुओं के लिये है, अन्य धर्मावलंबी केवल सहायता-मात्र दे सकते हैं।

कुछ लोग यह कहते हैं कि यह प्रश्न कानून द्वारा हल हो सकता है। पर गांधीजी इसका बड़ा सुंदर उत्तर देते हैं। नीचे जो लेख छापा जा रहा है, वह उन्होंने पिछले वर्ष जेल जाने के पहले 'यंग इंडिया' के संपादक को बोल दिया था। उस समय हर मिनट पुलिस के आगमन और गिरफ़्तारी की प्रतीक्षा हो रही थी।—संपादक]

१—पिछले सप्ताह वर्किंग कमेटी की बैठकों के सिलसिले में ही मंदिर-प्रवेश-सत्याग्रह के संबंध में कई प्रश्नों पर मैं केरल के तथा अन्य कांग्रेस-कार्यकर्ताओं से परामर्श कर रहा था। उन परामर्शों के समय क्या बातचीत हुई, यह देना तो व्यर्थ होगा, पर मैं नीचे कुछ बातें लिख रहा हूँ, जिनको प्रश्नों का उत्तर समझना चाहिए। उत्तर इस प्रकार लिखे जाते हैं कि प्रश्नों को देने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। यद्यपि यह सत्य है कि अछूतोद्धार का राजनीतिक महत्त्व है, पर इसका प्रधान महत्त्व धार्मिक है, और इसका सुलझाना हिंदुओं का काम है, अतएव उनके लिये इस प्रकार से यह कार्य राजनीति से भी अधिक महत्त्व-पूर्ण हो जाता है

अर्थात् छूतों का अछूतों के प्रति कर्तव्य किसी राजनीतिक विषमता के कारण भी कम नहीं हो सकता, अतएव वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति के कारण अछूतोद्धार के प्रश्न को टाल देना किसी प्रकार से भी संभव नहीं है।

२—किसी धार्मिक तथा सत्यनिष्ठ और त्याग-पूर्ण कार्य में सुधारक को हर प्रकार की कठिनाई का सामना करना पड़ता है, और उसे अधिकारी-समुदाय का अस्थायी वैर भी सहना पड़ता है। इसलिये जिनका यह विश्वास है कि अछूत-प्रथा एक अभिशाप है, और उसको हर हालत में मिटा देना चाहिए, वे इस भय से कि उनके-ऐसों की संख्या नितांत कम है, अपना प्रयत्न लेश-मात्र भी कम नहीं करेंगे।

३—यदि वर्तमान पुजारी काम करना छोड़ दें, और अभी तक जिस ख़ास वर्ग से पुजारी मिलते आए हैं, उनमें से कोई दूसरा पुजारी न मिले, तो मैं यह निस्संकोच कहने के लिये तैयार हूँ कि पुजारी के गुणों से संपन्न किसी भी दूसरी जाति का आदमी नियुक्त कर लेना चाहिए। जहाँ तक मुझे मालूम है, अधिकांश पुजारी अपनी जीविका के लिये इसी कार्य पर इतने आश्रित हैं कि वे काम नहीं छोड़ेंगे—हड़ताल नहीं करेंगे। पूजा का अधिकार पैत्रिक है, इस बात में मुझे भी संदेह नहीं है! पर यदि कोई पुजारी स्वयं यह अधिकार छोड़ देता है, तो इसमें दोष उसी का है।

४—यदि मंदिर के अधिकारी मंदिर का एक कोना अछूतों को दे दें, उनको वहीं से दर्शन या पूजा का अधिकार दे दें, तो यह पर्याप्त नहीं समझना चाहिए। अन्य अब्राह्मणों के लिये जो बाधाएँ नहीं हैं, वह इन ब्राह्मणों के लिये नहीं होनी चाहिए। किंतु जो लोग अछूतों से नहीं मिलना चाहते, उनके लिये दूर पर एक कोना ख़ाली कर देना चाहिए। इस प्रकार वे ही स्वयं अछूत हो जाते हैं।

४—मंदिरों के घेरे को तोड़ना ठीक नहीं। यह एक प्रकार का हिंसा-जनक कार्य होगा। यह सत्य है कि घेरे निर्जीव हैं, पर उनको बनानेवाले हाथ तो सजीव हैं।

ऊपर लिखी बातों से यह स्पष्ट है कि मंदिर-प्रवेश-सत्याग्रह करनेवाले के लिये मंदिरों में विश्वास करना आवश्यक है। मंदिर-प्रवेश एक धार्मिक अधिकार है। इसलिये किसी अन्य व्यक्ति द्वारा मंदिर-प्रवेश-सत्याग्रह नहीं कहा जा सकता। वैकम सत्याग्रह में जब जॉर्ज जोज़ेफ़ जेल गए, मैंने उनको सूचित किया था कि वह भूल कर गए। वह मुझसे सहमत हुए, तुरत क्षमा याचना की, और छूट गए। मंदिर-प्रवेश-सत्याग्रह छूत हिंदू का प्रायश्चित्त है। उसने पाप किया है, इसलिये इन अछूत सहधर्मियों को मंदिर ले जाने की चेष्टा करते हुए वह स्वयं दंड भोगने को तैयार है। अतएव अहिंदू केवल सत्याग्रह के अलावा और सहायता दे सकते हैं। उदाहरणार्थ यद्यपि अन्य समुदाय के लोग भी गुरुद्वारा-आंदोलन के समय सिक्खों की सहायता कर रहे थे, पर अखंड पाठ में विश्वास करनेवाले ही सिक्ख सत्याग्रह करने के अधिकारी थे, और सत्याग्रह कर रहे थे।

६—मेरी सम्मति में केवल अछूतों को ही सत्याग्रह नहीं करना चाहिए। इसका अगुआ छूत-सुधारक होना चाहिए। यह आवश्यकता की बात है। एक ऐसा समय भी आ सकता है, जब अछूत स्वयं सत्याग्रह कर सकते हैं। यहाँ मैंने जो विचार प्रकट किए हैं, उनका भावार्थ यह है कि सत्याग्रह प्रारंभ करने के पहले छूत हिंदुओं में पर्याप्त जागृति तथा क्रियाशीलता का हो जाना आवश्यक है। यह शस्त्र की सफलता सार्वजनिक सम्मति पर निर्भर करती है। अतएव इसके उपयोग के पहले प्रायः सभी ज्ञात पुराने उपायों का प्रयोग करना होता है।

७—एकदम निजी संपत्तिवाले मंदिरों में प्रवेश का अधिकार नहीं

माँगा जा सकता । जब कोई अपने निजी मंदिर को जनता के उपयोग के लिये दे देता है, पर अछूतों को आने की मनाही कर देता है, उसी समय वह मंदिर निजी संपत्ति नहीं रह जाता ।

८—कुछ की सलाह है कि सत्याग्रह द्वारा मंदिर-प्रवेश रोक दिया जाय, और यह कार्य व्यवस्थापक क़ानूनों के हाथ छोड़ दिया जाय। मैं इस सम्मति से बिलकुल ही असम्मत हूँ । यह तो नियम ही है कि व्यवस्थापक सभा के क़ानून, कम-से-कम प्रजातंत्र में तो अवश्य ही, सार्वजनिक मत के अनुसार ही बनते हैं, और सार्वजनिक सम्मति की रचना के लिये सत्याग्रह से बढ़कर शीघ्र उपाय मैं कोई जानता ही नहीं ।

असली जड़

[यह लेख छोटा तथा बहुत पुराना है। अर्थात् २३ ऑक्टोबर, १६२१ का है। पर आज इससे एक बड़े भारी प्रश्न का उत्तर मिलता है कि राजनीतिक लड़ाई ज़्यादा ज़रूरी है या अछूतोद्धार।—संपादक]

एक संवाददाता का प्रश्न है—

"क्या आप यह नहीं समझते कि वर्तमान विदेशी सरकार की सफलता का कारण उच्च वर्णों द्वारा दरिद्र, दुर्बल तथा अछूत कहलानेवाले भाइयों का दमन है।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे द्वारा अपने सगे-संबंधियों का दमन ही मूल कारण है। यह आध्यात्मिकता से पतन है। धर्म के नाम पर हम अपनी जाति के छठे अंश की अप्रतिष्ठा करते हैं, तथा उनके हितों का अपहरण कर रहे हैं. उसका सबसे न्याय-पूर्ण दंड ईश्वर ने यह दिया है कि एक विदेशी सरकार हमारी अप्रतिष्ठा तथा हमारे सत्वों का अपहरण कर रही है। इसीलिये मैंने अछूतोद्धार को स्वराज्य-प्राप्ति के लिये अनिवार्य बतलाया है। चूँकि हमारे यहाँ दूसरों से अपनी स्वयं दासत्व प्रथा है, हमने स्वयं दास बना रक्खे हैं, इसलिये हमको दासता के लिये झगड़ा करने का अधिकार नहीं है, जब तक कि हम स्वयं अपने दासों को बिना शर्त मुक्त न कर अधिकार न दे दें। हमें पहले अपनी आँखों से अछूतपन का शहतीर दें, तथा उसके निकाल देना चाहिए, तब हम अपने मालिकों की आँखों से दासता का 'तिल' निकालने की चेष्टा करें।

यदि मेरा पुनर्जन्म हो

[इस पुस्तक का यह २०वां तथा अंतिम लेख है। गांधीजी के विचारों का हर पहलू से अध्ययन हो सकेगा, पर अंत में हम उनके एक व्याख्यान का अंशानुवाद दे देना चाहते हैं। १६२१ की १३-१४ एप्रिल को अहमदाबाद में दलित-जाति-सम्मेलन हुआ। गांधीजी उस अवसर पर सभापति थे। उस समय का भाषण आज हम इसलिये दे रहे हैं कि इस समय वही सबसे सजीव व्याख्यान है। उसकी प्रत्येक पंक्ति में गांधीजी का मार्मिक उद्गार, दलितों के प्रति अपार स्नेह तथा हरिजनों के प्रति अगाध अनुराग भरा हुआ है। गांधीजी उस समय प्रधान बात कह देते हैं, जब वह कहते हैं कि यदि मैं पुनः जन्म लूँ, तो अछूत के घर।—संपादक]

मेरी समझ में नहीं आता कि सुधार का गलत अर्थ लगानेवालों या उसके विरोधियों को किस प्रकार अपने मत का बना लूँ। मैं उनके सामने कैसे वकालत करूँ, जो किसी दलित व्यक्ति को छू लेना गंदा होना समझते हैं, और इस अपवित्रता को दूर करने के लिये आवश्यक शुद्धि-स्नान इत्यादि करते हैं, तथा ऐसा न करना पाप समझते हैं। मैं उनके सामने केवल अपना मंतव्य-मात्र ही प्रकट कर सकता हूँ।

मैं अछूत-प्रथा को हिंदू-समाज का सबसे बड़ा कलंक समझता हूँ। अपने दक्षिण-आफ्रिका के घोर संग्राम में प्राप्त कटु अनुभवों से मेरे मन में यह विचार नहीं उठा है। कुछ लोगों का यह विचार भी गलत है कि ईसाई-धर्म तथा साहित्य के अध्ययन से मेरे मत

में ऐसे भाव उठे हैं। ये विचार उस समय से पनपे हैं, जब मैं न तो बाइबिल को जानता था न उसके अनुयायियों को।

यह विचार उस समय मेरे मन में उत्पन्न हुआ, जब मैं शायद पूरे १२ वर्ष का भी नहीं था। ऊका-नामक भंगी हमारे घर के पाख़ाने की सफ़ाई करने आया करता था। मैं प्रायः अपनी माता से पूछता था कि उसे छूने में क्या दोष है, पर मुझे उसे छूने की मनाही थी। यदि इत्तिफ़ाक़न् मैं ऊका को छू लेता, तो मुझे स्नान करना पड़ता, पर ऐसे अवसरों पर मुस्किराते हुए मैं कह देता कि धर्म में छुआछूत का कहीं ज़िक्र नहीं है। यद्यपि मैं बड़ा आज्ञाकारी बच्चा था, पर माता-पिता के प्रति पूर्ण सम्मान रखते हुए जहाँ तक संभव होता, मैं अपना विरोध प्रकट कर देता, और उनसे झगड़ बैठता था। मैंने अपनी मा से साफ़ कह दिया था कि उनका यह विचार बिलकुल भ्रम-पूर्ण है कि ऊका को छूना पाप है।

स्कूल में मैं प्रायः अछूतों को छू देता था। और, चूँकि मैं इस सत्य को अपनी माता से कभी नहीं छिपाता था, इसलिये मैं उनसे साफ़ कह दिया करता था, और उन्होंने मुझे बतलाया था कि अछूत को छूने के बाद जो पाप किया गया, उसको रद्द करने का सबसे सरल तरीक़ा यह है कि राह चलते किसी मुसलमान को छू दे। और, केवल अपनी माता के प्रति प्रेम और आदर-भाव के कारण मैं प्रायः ऐसा किया करता था। यद्यपि मैंने कभी इसे धार्मिक रूप से आवश्यक न समझा। कुछ समय बाद हम पोरबंदर चले गए, और यहीं मेरा संस्कृत से पहला परिचय हुआ। अभी तक मैं किसी अँगरेज़ी स्कूल में भरती नहीं हुआ था। मुझे और मेरे भाई को पढ़ाने के लिये एक ब्राह्मण रक्खा गया। उस अध्यापक ने हमें रामरक्षा तथा विष्णु-नाम पढ़ाना शुरू किया। तब से मैं इन पंक्तियों को कभी नहीं भूल सका हूँ कि "जले विष्णुः

स्थले विष्णुः।" निकट में ही एक बूढ़ी मा रहती थी। इन दिनों मैं बड़ा डरपोक था, और ज़रा भी रोशनी बुझने पर भूत-प्रेत की कल्पना करने लगता था। मेरा डर भगाने के लिये बूढ़ी मा ने कहा था कि जब कभी मुझे भय मालूम हो, मैं रामरक्षा के श्लोक का पाठ करना शुरू कर दूँ, इससे सभी भूत-प्रेत भाग जाते हैं। मैं ऐसा ही करने लगा, और इसका फल भी अच्छा हुआ। उस समय मैं कभी यह विश्वास ही नहीं कर सकता था कि रामरक्षा में कोई ऐसा श्लोक है, जिसके अनुसार अछूत का संपर्क पाप बतलाया गया है। पहले तो मैं उसका अर्थ ही अच्छी तरह नहीं समझता था—था समझता भी था, तो बहुत कच्चे तौर पर। पर मुझे यह विश्वास था कि जिस रामरक्षा के पाठ से भूत का भी भय भाग जाता है, वह अछूत से भय करना या उसका स्पर्श पाप-जनक नहीं बतलाता होगा।

हमारे परिवार में रामायण का नियमित रूप से पाठ होता था। लड्डा महाराज उसका पाठ करते थे। उन्हें कोढ़ हो गया था, और उनको विश्वास था कि यदि वह नियमित रूप से रामायण का पाठ करेंगे, तो कोढ़ अच्छा हो जायगा। मैंने अपने मन में सोचा, जिस रामायण में निषाद ने राम को गंगा पार कराया, वही रामायण यह कैसे सिखला सकती है कि अछूत को छूना पाप है। हम परमात्मा को पतितपावन इत्यादि नामों से पुकारते हैं। ऐसी दशा में हिंदू-धर्म में किसी को अपवित्र या अछूत सोचना पाप है, ऐसा करना निरा शैतानी काम है। तब से मैं बार-बार यही बात दुहराते नहीं थकता। बारह वर्ष की उम्र में मेरे मन में यह विचार जम नहीं गया था, मैं ऐसा कहने का पाखंड न करूँगा, पर मैं उस समय अछूत-प्रथा को पाप ज़रूर समझता था। वैष्णवों तथा अन्य हिंदुओं की सूचना के लिये यहाँ पर मैं यह कहानी दे रहा हूँ।

मैं सदैव सनातनी हिंदू होने का दावा करता हूँ। मैं हिंदू-शास्त्रों से बिलकुल अनभिज्ञ नहीं हूँ। मैं संस्कृत का विद्वान् नहीं हूँ। मैंने वेद-उपनिषद् का अनुवाद-मात्र पढ़ा है। अवश्य इसीलिये मेरा अध्ययन पांडित्य-पूर्ण नहीं है। मैं उनका घोर पंडित नहीं हूँ, पर मैंने एक हिंदू के समान उनका अध्ययन किया है, और मेरा दावा है कि मैंने उनका असली अर्थ समझ लिया है। २१ वर्ष की उम्र तक मैंने अन्य धर्मों की जानकारी भी हासिल कर ली थी।

एक समय था, जब मैं हिंदू-धर्म तथा ईसाई-धर्म के बीच खींचा-तानी में पड़ा हुआ था। जब मेरा दिमाग़ ठिकाने आया, मैंने यह अनुभव किया कि केवल हिंदू-धर्म द्वारा ही मेरी मुक्ति हो सकती है, और हिंदू-धर्म में मेरी श्रद्धा तथा ज्ञान और भी विकसित हो गया।

उस समय भी मेरा विश्वास था कि अछूत-प्रथा हिंदू-धर्म में नहीं है। यदि है, तो ऐसा हिंदू-धर्म मेरे लिये नहीं है।

यह सत्य है कि हिंदू-धर्म में अछूत को छूना पाप नहीं समझा जाता। शास्त्रों के अर्थ के विषय में मैं कोई तर्क नहीं करना चाहता। मेरे लिये यह कठिन-सा है कि भागवत अथवा महाभारत से उदाहरण उद्धृत करूँ। पर मेरा यह दावा है कि मैं हिंदू-धर्म का भाव समझ गया हूँ। अछूत-प्रथा को स्वीकृति देकर हिंदू-धर्म ने पाप किया है। इसने हमको नीचे गिराया और साम्राज्य को अछूत बना दिया है। हमारी छूत मुसलमानों को भी लग गई है, और हिंदू तथा मुसलमान दोनो ही दक्षिण-आफ़्रिका, पूर्वी आफ़्रिका, तथा कनाडा में अछूत समझे जाते हैं। यह सब अछूत-प्रथा का परिणाम है।

अब मैं अपनी बात साफ़ कर दूँ। जब तक हिंदू जान-बूझकर अछूत-प्रथा में विश्वास रखते तथा इसे धर्म समझते हैं, जब तक अधिकांश हिंदू अपने एक अंग को, भाइयों को, छूना पाप समझते

हैं, स्वराज्य प्राप्त करना असंभव है। युधिष्ठिर ने अपने कुत्ते के बिना स्वर्ग जाना अस्वीकार कर दिया। इसी प्रकार अब उसी युधिष्ठिर की संतान बिना अछूतों के स्वराज्य प्राप्त करना चाहती है। आज जिन अपराधों के कारण हम सरकार को शैतान कहते हैं, क्या वही हमने अछूतों के प्रति नहीं किया है।

हम अपने भाइयों को दबाने के दोषी हैं। हम उन्हें पेट के बल रेंगाते हैं। हम उनकी नाक ज़मीन पर घिसवाते हैं। ग़ुस्से से लाल आँखें कर हम उन्हें रेल के डब्बे के बाहर ढकेल देते हैं। ब्रिटिश शासन ने इससे ज़्यादा और क्या किया है। जो अपराध हम डायर, ओ डायर के सिर मढ़ते हैं, उनमें से कौन अपराध हमारे सिर नहीं मढ़ा जा सकता। हमें इस अपवित्रता को निकाल बाहर करना चाहिए। जब तक हम दरिद्र तथा निस्सहायों को पीड़ा देते हैं, जब तक यह एक भी स्वराजी के लिये संभव है कि किसी व्यक्ति के भावों को पीड़ा पहुँचावे, स्वराज्य की बात करना मूर्खता है। स्वराज्य का यह अर्थ है कि एक भी हिंदू या मुसलमान के लिये यह संभव न हो कि एक भी दरिद्र हिंदू या मुसलमान को दबावे—पीड़ा दें। जब तक यह शर्त नहीं पूरी होती, हमें एक ओर स्वराज्य मिलेगा, दूसरी ओर छिन जायगा। हम मनुष्य नहीं, पशु हैं, यदि अपने भाइयों के प्रति पाप का प्रायश्चित्त न करें।

पर, मुझे अभी तक अपने में विश्वास है। मैं देख रहा हूँ, कवि तुलसीदास ने, जैनों तथा वैष्णवों ने, भागवत तथा गीता ने अनेकों रूप से जिस एक वस्तु का गुण गाया है, वही दानशीलता, वही दयालुता तथा वही प्रेम धीरे-धीरे, पर दृढ़ता के साथ हमारे देश की जनता के हृदय में घर कर रहा है।

आजकल हिंदू-मुसलमानों के अनेक झगड़े सुनने में आते हैं।

अब भी ऐसे बहुत-से हैं, जो एक दूसरे को क्षति पहुँचाने में नहीं हिचकिचाते। पर, मैं तो यह समझता हूँ, कुल मिलाकर प्रेम तथा दयालुता बढ़ती जा रही है। हिंदू-मुसलमान ईश्वर से डरने लगे हैं। हमने अपने को अदालतों तथा स्कूलों के जादू से छुड़ा लिया है, और इसी प्रकार का और कोई कपटजाल हमें नहीं सता रहा है। मैंने यह भी अनुभव कर लिया है कि जिनको हम अपढ़ तथा अज्ञानी कहते हैं, वे ही लोग शिक्षित कहलाने के योग्य हैं। वे हमसे ज़्यादा संस्कृत, उनका जीवन हम से ज़्यादा न्यायशील है। जनता की वर्तमान मनोवृत्ति का ज़रा भी अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जन-सामूहिक मत के अनुसार स्वराज्य रामराज्य का पर्यायवाची है।

यदि मेरे अछूत भाइयों को इस जानकारी से कोई तसल्ली हो, तो मैं यह कहने के लिये तैयार हूँ कि अब उनकी समस्या से पहले इतनी बेचैनी नहीं पैदा हो जाती। मेरा यह मतलब नहीं है कि तुम हिंदुओं से ज़रा भी निराश न होओ। जब उन्होंने तुम्हारा इतना अहित किया है, तो वे अविश्वास के योग्य तो हैं ही। स्वामी विवेकानंद कहा करते थे कि अछूत दलित नहीं, पीड़ित हैं, तथा उनको पीड़ा देकर स्वयं हिंदुओं ने भी अपने को पीड़ित बना लिया है।

शायद ६ एप्रिल को मैं नेलोर में था। उस दिन मैंने अछूतों के संग आज के ही समान प्रार्थना की थी। मैं तो मोक्ष प्राप्त करना चाहता हूँ। मैं पुनः जन्म लेना नहीं चाहता। पर यदि मेरा पुनर्जन्म हो, तो मैं अछूत के घर पैदा होऊँ, ताकि मैं उनकी पीड़ा, विपत्ति, संकटों में उनका साथ दूँ, और उनके साथ मिलकर इस दुर्दशा को समाप्त करने की चेष्टा करूँ। इसीलिये मैंने प्रार्थना की कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो, तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के घर नहीं, बल्कि अशूद्र की कोख से।

आज का दिन उस दिन से भी अधिक गंभीर है। आज हमारे हृदय हज़ारों की हत्या से चलनी हो रहे हैं। इसलिये मैंने आज भी प्रार्थना की है कि यदि मैं अपनी किसी अपूर्ण इच्छा के कारण मर जाऊँ, या अछूतों के प्रति अधूरी सेवा करके ही मर जाऊँ, या अपने हिंदुत्व को बिना पूरा किए ही मर जाऊँ, तो मैं अछूतों में ही जन्म लूँ, ताकि मेरा हिंदुत्व पूर्ण हो जाय।

अछूतों से—अछूत कहलानेवालों से—भी मैं एक बात कहना चाहता हूँ। तुम्हें हिंदू होने का दावा है। इसलिये यदि हिंदू तुम्हें दबाते हैं, तो तुमको यह समझ लेना चाहिए कि यह हिंदू-धर्म का नहीं, धर्म के पालन करनेवालों का दोष है। आपको अपने को मुक्त करने के लिये स्वयं पवित्र बनना होगा। आपको मदिरा आदि की बुरी लतों को छोड़ना होगा।

मैंने देश-भर के अछूतों को देखा है, तथा मेरा-उनका संपर्क रहा है। मैंने यह देखा है कि उनमें सुधार की इतनी संभावनाएँ हैं, उनमें इतने गुण छिपे हुए हैं, जिनको वे स्वयं नहीं जानते। उनका मस्तिष्क अणुवत् रूप से पवित्र है। मैं तुमसे बुनना-कातना सीखने के लिये अनुरोध करूँगा, और यदि तुम इनको अपना लोगे, तो दरिद्रता को अपने दरवाज़े से भगा दोगे।

अब वह समय आ गया है, जब चाहे कितनी भी सफ़ाई से तुमको जूठन दिया जाय, तुम लेना अस्वीकार कर दो। केवल अच्छा, ताज़ा, बढ़िया नाज और वह भी आदर से दिया हुआ लो। मैंने जो आपसे कहा है, यदि उसके अनुसार आप काम करेंगे, तो कुछ महीनों में नहीं, कुछ दिनों में ही आपका उद्धार हो जायगा।

हिंदू स्वभावतः पापी नहीं हैं। वे अज्ञान में डूबे हुए हैं। इस साल अछूत-प्रथा नष्ट हो ही जानी चाहिए। संसार में केवल ऐसी दो ही वस्तुएँ हैं, जिनके कारण मुझे नर-चोला धारण करने का लोभ

होता है, और वे हैं अछूतोद्धार तथा गोरक्षा। जब ये दो इच्छाएँ पूर्ण हो जायँगी, तभी स्वराज्य हो जायगा, और मुझे मोक्ष मिलेगा। ईश्वर तुम्हें भी इतनी शक्ति दे कि अपना मोक्ष प्राप्त कर सको।